स्वर्गस्थ माता-पिता

की

वन्दना करके

श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें

यह पुष्प

समर्पित करता हूँ।

निवेदन।

श्री समर्थ रामदास स्वामी की 'मनाचे श्लोक' नामक उत्कृष्ट रचना (भूमिका तथा टिप्पणियोंसहित) अनूदित करनेके पश्चात् परम दयालु भगवान श्री रामचन्द्रजी की कृपाके फलस्वरूप उनके दासानुदासके (श्री समर्थ रामदास) चरित्र, काव्य और अन्य विविध बातें, यथामति संक्षेपमें हिन्दी जाननेवाली जनताके समक्ष रखनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ इसीमें मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

स्वामीजीके जीवनकी कुछ घटनाओंके सम्बन्धमें निश्चित स्वरूपकी विश्वसनीय ऐतिहासिक जानकारी यद्यपि आज सम्पूर्णतया उपलब्ध नहीं है तथापि अनेक ग्रन्थकर्ताओंने अपने अपने तर्क-बुद्धि-प्रामाण्य के द्वारा उपलब्ध जानकारी का आश्रय लेकर स्वामीजीका चरित्र लिखा है और आज भी लिख रहे हैं। **'सत्कार्योत्तेजक सभा' तथा 'समर्थ वाग्देवता मन्दिर' धुले, के संस्थापक, पोषक और प्राण श्री शंकर श्रीकृष्ण देवजी ने अपने जीवनमें असंख्य विपत्तियों का सामना करके अपना तन, मन और धन स्वामीजीके साहित्य-सम्बन्धी खोजमें लगाया जिसका मधुर फल आज हम लोग चख रहे हैं** और कई अध्ययन करनेवालों को उपलब्ध खोजकी प्रामाणिकता के सम्बन्धमें आलोचना करनेका भी अवसर मिला है। **ऐसे महान् कार्य के लिए श्री देवजी के प्रति कृतज्ञ होना हमारा प्रथम कर्तव्य है।**

श्री समर्थ रामदास एक महान् पुण्यात्मा व्यक्ति थे। भागवत संप्रदाय के अनुसार उत्कट भक्ति के साथ अपने जीवनभर उन्होंने निष्काम कर्म किया। वे भक्ति, कर्म और ज्ञानमार्गके द्वारा सत्स्वरूपमें लीन होनेवाले सिद्ध पुरुष थे। साथ ही साथ उनका लक्ष्य सारी जनताको प्रबुद्ध करनेकी ओर भी था। उनका तत्त्वज्ञान स्पष्ट, सरल, सुसंगत और कर्मयोगपरक है। उसमें प्रयत्नवाद प्रधान है। उनका मायावाद केवल अधिकारी और शुद्धात्मा व्यक्तिके लिए ही सीमित है। उनका उपदेश साधारणसे लेकर असाधारण व्यक्तितक के जीवनमें बहुत ही उपकारक है। ऐसा साहित्य स्वभावतः स्थायी,

सन्देहरहित, उज्ज्वल और उपादेय होता है। हमें पूर्ण विश्वास है कि **इस प्रकारके साहित्यकी शिक्षा, दीक्षा तथा खोजमें हमारी सरकार शीघ्र ही अपना सहयोग प्रदान कर हमें प्रोत्साहित करेगी।** प्रस्तुत पुस्तक लिखनेका यही प्रधान उद्देश्य है कि **हरएक पाठशाला एवं विश्वविद्यालयका प्रत्येक विद्यार्थी श्री समर्थ रामदास स्वामीके उत्कट, भव्य और निःस्पृह जीवनसे परिचित हो उनके साहित्यसे अधिकसे अधिक भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का** लाभ **उठावे और अपने राष्ट्रका दर्जा बढ़ानेमें सदैव यत्नशील रहे।**

इस पुस्तकके चरित्र खण्ड, काव्य खण्ड और विविध इस प्रकार मैंने तीन विभाग किये हैं। पुराने और आधुनिक चरित्र ग्रन्थों तथा स्वामीजीकी कवितामें जो अंश मुझे अच्छा लगा उसीको ग्रहण कर अति संक्षेपमें किन्तु **उनके जीवनकी चुनी हुई सम्पूर्ण घटनाओंको चरित्र खण्डमें प्रस्तुत करनेका प्रयास** मैंने किया है। महत्त्व पूर्ण विभिन्न स्थानोंकी ठीक कल्पना आजावे इसलिए **दो मानचित्र** भी इसमें सम्मिलित हैं।

काव्यखण्डमें काव्यकी परिभाषा, उसके स्वरूप, पक्ष आदिका संक्षेपमें विवरण तथा काव्य के सम्बन्धमें स्वामीजीके स्वतःके विचारोंको देकर उनके काव्य ग्रन्थोंको मैंने साधारण तौर पर झाँका है। **स्वामीजी की कविता विस्तृत एवं ओजस्वी होनेके कारण उसका संक्षिप्त चयन करना कठिन पड़ता है,** तथापि यत्न करके यथामति **श्री दासबोध** आदि ग्रन्थोंमें से **चुनी हुई कविता का चयन** किया गया है। अर्थ लगानेमें सुविधा हो इसलिए कठिन शब्दोंके अर्थ भी दिये गये हैं।

तीसरे भागमें प्रमाण स्वरूप समर्थ चरित्रका आधार **'बाकेनिशी टिपण'** देकर संभाजीको प्रेमपूर्ण उपदेश, **श्रीसमर्थ संप्रदाय,** श्रीसमर्थ मन्दिर जाम्ब और मुख्य मुख्य मठोंकी अति संक्षिप्त जानकारी, रामदासजी के जीवनकी कुछ आख्यायिकाएँ और अन्तमें स्वामीजीका जोशीली भाषामें **रचा हुआ भीमरूपी स्तोत्र** और हनुमानजी की **आरती** भी दी गई है।

जिन सज्जनोंने इस पुस्तक के सृजन में मुझे किसी न किसी रूपमें अमूल्य सहायता प्रदान की है, उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता हृदय से प्रकट करता

हूँ। उनमें कविवर **श्री वा गो. मायदेव** प्राध्यापक, एस एन डी टी. कालेज, बम्बई, हिन्दीके प्रसिद्ध अध्यापक **श्री राधेश्याम पाठक**, मारवाडी कमर्शियल हाई स्कूल बम्बई; **श्री मुरलीधर ताम्बे**, प्राध्यापक, नाटिकल कालेज, बम्बई, **श्री म. सी करमरकर** प्राध्यापक, हि. वि विद्यालय, काशी तथा मन्त्री, भारतीय साहित्य सहकार, काशी और श्री रा. वा. वैल्कर बम्बई, विशेष उल्लेखनीय हैं।

वैसेही जिन विद्वान अधिकारी सज्जनोंने बडे प्रेमसे अपनी शुभ सम्मतियाँ देकर इस पुस्तक का ऐश्वर्य बढाया है उनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

सन्तवर श्री समर्थ रामदास स्वामी अपने जीवनमें सदैव ही आगे रहे और उन्होंने औरोंको भी आगे बढाया। इस प्रकार उन्होंने आत्मकल्याण कर लोककल्याण किया। **श्री माखनलाल चतुर्वेदीजी** का कथन है कि **सन्त विद्रके गुणोंका व्यापार कर आगे बढते हैं; सन्तोंके पास विभाजक-रेखा नहीं रहती।** अतः प्रत्येक भारतीय युवक को चाहिए कि वह अपने जीवन को एक बोझ न समझकर **भारतीय सन्तोंके जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करके अपने जीवनमें आगे बढे और राष्ट्रकी अनेक विध सम्पत्ति बढानेमें अपना हाथ बँटावे।** यही सदिच्छा व्यक्त कर जिन भगवान श्री रामचन्द्र प्रभूने मुझे यह पुस्तक लिखनेके लिए प्रेरणा दी उनके चरणकमलोंमें नत-मस्तक होकर मैं अपना यह नम्र निवेदन समाप्त करता हूँ।

देव दीपावलि,
शक १८७३
स. २००८

नम्र सेवक
दिवाकर बालाजी जोगलेकर

विषय-सूची

सांकेतिक चिन्होंका स्पष्टीकरण।

संक्षिप्त	स्पष्टीकरण।	संक्षिप्त	स्पष्टीकरण
म. भा.	महाभारत	स. गा.	समर्थांचा गाथा
स. प्र.	समर्थ प्रताप	प्र. खं.	प्रथम खंड
ओ.	ओवी	यु. कां.	युद्धकांड
दा.	दासबोध	सां. वि. वि.	साम्प्रदायिक विविध विषय
स्वा. दि.	स्वानुभव दिनकर		

भारतवर्ष
सतारा जिलेके ग्यारह स्थानोंमें
श्रीसमर्थ के द्वारा स्थापित की गई श्री
हनुमानजीकी मूर्त्तियाँ।
अनुक्रम प्रत्येक स्थानके आगे दिया गया है।

चरित्रखण्ड ४१ से ८१
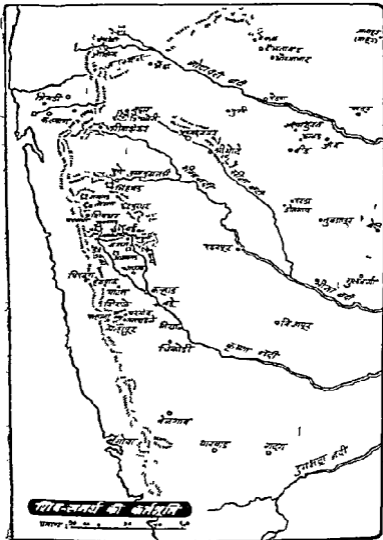
भारतवर्ष
लंका
सतारा जिलेके ग्यारह स्थानोमें श्रीसमर्थ के द्वारा स्थापित की गई श्री हनुमानजीकी मूर्तियाँ।
क्रमांक प्रत्येक स्थानके आगे दिया गया है।

चरित्रखण्ड ४१ से ८१

इस पुस्तक के प्रति विद्वानोंकी सम्मतियाँ

ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समर्थभक्त श्री शंकर श्रीकृष्ण देव, धुले—श्री समर्थ चरित्र हिन्दी में लिखे जानेकी बहुत आवश्यकता थी। मराठी न जाननेवाली जनता को यह चरित्र उपलब्ध हो जाय ऐसी जिज्ञासा जाग्रत होती हुई दिखाई देती है। एक बार समर्थ-कार्यार्थ जब मैं केंद्रा गया था तब मैंने श्री समर्थ-चरित्रपर अंग्रेजी में ही व्याख्यान दिया। उस प्रान्तके लोगोंको यह अपूर्वसा प्रतीत हुआ और बहुत पसन्द आया। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यह चरित्र हिन्दी में कोई लिखेगा? उसका उत्तर मैं आज दे सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि श्री जोगलेकर जी का लिखा हुआ चरित्र मराठी न जाननेवालों का समाधान करेगा। अत्यंत सहृदयता के साथ लिखे जाने के कारण वह सबको अच्छा लगेगा और उनका समाधान होगा इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है जिसमें इस चरित्रका सर्वत्र प्रसार होना अभीष्ट है।

१८७३ गणेश चतुर्थी [अनुवाद]

भूतपूर्व हि. सा. स. के सभापति, देशके युग निर्माता कवि, **श्री माखनलाल चतुर्वेदीजी**, सम्पादक, 'कर्मवीर' खण्डवा (म. प्र.)—श्री जोगलेकर जी की 'श्रीसमर्थ रामदास' पुस्तक पढ़कर आनन्द हुआ। समर्थ रामदास स्वामीकी जीवनघटनाओंसे हिन्दी के पाठक परिचित हों यह आवश्यक है। आजसे ३७–३८ वर्ष पहिले पूज्य पं. माधवरावजी सप्रे ने समर्थ के दासबोध का हिंन्दी अनुवाद किया था। जोगलेकरजी के नवीन आयोजन से हिन्दी पाठकोंको दोहरा लाभ होगा। वे समर्थके जीवनसे और उनके कार्यसे परिचय और प्रेरणा पा सकेंगे; साथ ही जिन महाराष्ट्र भाषी विद्वानोंने हिन्दी सीखी है उनकी निर्मल साहित्यिक समाज-सेवाके रूपमें श्री जोगलेकरजी से भी इस कृतिके रूपमें परिचित हो सकेंगे।

२१–७–१९५१

चरित्र खण्ड

श्रीराम जयराम जय जय राम।

'दक्षिणमें रामदास स्वामीने इसी लोक धर्माश्रित भक्तिका संचार करके महाराष्ट्र शक्तिका अभ्युदय किया।'

(आचार्य रामचंद्र [illegible])

श्रीराम।

श्री समर्थ रामदास।

१

सन्तों का कार्य।

जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूती।
देह कष्टविती उपकारें॥ (तुकाराम)

भारत के प्राङ्गण में आजतक जिन सन्तों ने लोक-कल्याण के लिए अपनी देहको कष्ट देकर अपना जीवन सफल किया, उन में श्री समर्थ रामदास स्वामीजी का व्यक्तित्व अपनी अलग विशेषता रखता है।

भारत के भिन्न भिन्न विभागों में परधर्मियों के कठोर प्रहारों का सामना करते हुए इन सन्तोंने तत्त्वज्ञान में श्रेष्ठ और अखिल विश्व को मिलनेवाली शान्ति और सुखको पुष्ट करनेवाले वैदिक धर्म का उज्जीवन किया। महाराष्ट्रीय सन्तों का भी हाथ इसमें है। इस अतुलनीय धर्मबल के सहारे उस समय जनता का भारतीयत्व नष्ट नहीं हुआ। किन्तु आज भारत का कुछ भूभाग तथाकथित इन्हीं परधर्मियों के हाथ में है। ये परधर्मी अधिकांश प्रथम भारतीय ही थे। कुछ सामाजिक या राजनीतिक दबाव से इन लोगोंको अन्य धर्म स्वीकार करना पड़ा। बीचमें इतना दीर्घकाल व्यतीत हुआ कि वे लोग परधर्मियोंके धर्म बन्धन से पूर्णतया जकड़ गये।

इस प्रकार भारतके अखण्डत्वपर अन्य धर्मियोंका निर्दय कुठाराघात हुआ। प्राचीन कालमें सन्तोंने इतना धर्मरक्षणका महान प्रयास किया तथापि आज भारत की एक तिहाई जनता परधर्मियोंका शिकार बन गयी, यह भारत के लिए एक अत्यन्त दुर्दैवपूर्ण घटना है। इस दुर्भाग्य में सौभाग्य इतना ही है कि 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः।' इस मार्गका अवलम्बन करनेके कारण अन्त में भारत का अंशतः कल्याण हुआ।

उपर्युक्त विवेचनका अर्थ यह नहीं है कि केवल सन्तोंके द्वारा ही राष्ट्र की उन्नति होती है। बलवान और सन्मार्गगामी शासकों की भी आवश्यकता होती है। सन्त अपनी अमृततुल्य वाणी के द्वारा राष्ट्रका मार्गदर्शन करते हैं, जनता में समता उत्पन्न करते हैं और शासकको बार बार अपनी सलाह देकर उसको अपने प्रभावशाली उपदेशों से उत्साहित करते हैं। समाज का स्थितिस्थैर्य जिसपर निर्भर होता है, ऐसे धर्म के पालनकी शिक्षा देते हैं। यह हमें अतीतकालीन इतिहास से भली भाँति ज्ञात होता है।

सर्व श्रेष्ठ सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरित का आदर्श लोगों के सामने रखकर मार्गदर्शन किया। उसमें जीवन की सभी दशाओं का पूर्ण मार्मिकता के साथ उन्होंने चित्रण किया। उसके सौन्दर्य द्वारा जनता को लोक धर्म की ओर फिरसे आकर्षित किया। उत्तर भारत में यदि उस समय तुलसीदास जैसे श्रेष्ठ सन्तकवि न होते तो धर्म का साम्राज्य डॉवाडोल हो गया होता। जनता के सामने रामराज्य का आदर्श रखकर उन्होंने संसार का बडा उपकार किया है। उनके रामराज्य में

बयरु न करु काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥ ४

स्व. रामचन्द्र शुक्लजी भारतीय राजाका आदर्श बतलाते हुए लिखते हैं –

"भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्मशक्तिस्वरूप है। फारस और बाबुलके बादशाहों के समान केवल धनबल और बाहुबलकी पराकाष्ठा मात्र नहीं। यहाँ राजा सेवक और सेनाके होते हुए भी शरीरसे अपने धर्मका पालन करता हुआ दिखाई पडता है। यदि प्रजाकी पुकार संयोगसे उसके कानमें पडती है तो वह आपही रक्षा के लिए दौडता है ज्ञानी महात्माओंको सामने देख सिंहासन छोडकर खडा हो जाता है, प्रतिज्ञाके पालन के लिए शरीरपर अनेक कष्ट झेलता है स्वदेशकी रक्षा के लिए रणक्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पडता है प्रजाके सुखदुख में साथी होता है, ईश्वरांश माने जानेपर भी मनुष्यत्व नहीं छोडता। वह प्रजा के जीवन से दूर बैठा हुआ उसमें किसी प्रकार का योग न देनेवाला खिलौना या पुतला नहीं है। प्रजा अपने सब प्रकारके भावों का—त्यागका, शीलका, पराक्रमका,

सहिष्णुता का, क्षमा का—प्रतिबिम्ब उसमें देखती है।" (गो तुलसीदास 'लोकनीति और मर्यादावाद')

इस प्रकार सन्तों के द्वारा ही शासन का आदर्श जनता के सामने रखा गया। धर्म के अधिष्ठान पर ही ससार व्यवस्थित रूप धारण करता है। क्यों कि—

"धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजा।
य. स्यात् धारणसंयुक्त. स धर्म इति निश्चयः॥
(म भा १२ १०९ ११)

अर्थात् सबको धारण करनेके कारण ही उसको धर्म कहा गया है। प्रजाओं की धारणा धर्म से ही होती है। जो धारण सम होता है उसे ही निश्चित रूप से धर्म कहा जाता है।" साक्षात् स्वरूप लक्षण तो वेदप्रतिपादित चोदना (प्रेरणा) में ही है।

सवत् १२२० के पश्चात् दक्षिण भारत में विशेषत महाराष्ट्र में महानुभाव और लिंगायत नामक अवैदिक पथों के फैल जाने से धार्मिक पतन और मनोदुर्बलता की हद हो गयी थी। वैदिक धर्म की क्षमता या तेजस्विता नष्ट हो रही थी। ऐसे समय श्री ज्ञानेश्वर महाराजने उस वैदिक धर्म को अपनी दिव्य वाणी और कुशाग्र बुद्धि के द्वारा बचा लिया। पाण्डित्य का वह मध्याह्न काल था। प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में पण्डितों की मनोवृत्ति अत्यन्त अनुदार थी। उस विशिष्ट परिस्थिति के अनुरूप भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी। यह कार्य श्री ज्ञानेश्वर महाराजने किया। परधर्मियों का प्रहार सहन कर अपने वैदिक धर्म को अक्षुण्ण रखने के लिए श्री ज्ञानेश्वर महाराजने पराकाष्ठा का परिश्रम किया। उन के पश्चात् सन्त नामदेवने ईश्वर के सगुण रूपको जनता के समक्ष रखकर धर्म की रक्षा की। एकनाथ जीने सगुण निर्गुण का एकीकरण करके उपासना और ज्ञान का समन्वय किया। सन्त तुकारामने अपनी प्रसिद्ध अभग वाणी के द्वारा उसी वैदिक धर्म की रक्षा की। रामदासजीने तो अपने उपदेश और आचरण के द्वारा लोकसग्रह कर श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के द्वारा महाराष्ट्र को 'आनन्दवन भुवन' बनवा दिया।

इस प्रकार समाज का हित करना ही सन्तो के जीवन का ध्येय होता है। महाराष्ट्रीय सन्तोंने अप्रत्यक्षतया समस्त संसार का उपकार किया है, कारण उन्होंने श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया। अखिल मानव जाति को शान्ति और सुख देनेवाले वैदिक धर्म का उज्जीवन किया। रामदासजी के कार्य के सम्बन्धमें स्व. रामचन्द्र शुक्लजी लिखते हैः—'दक्षिणमें रामदास स्वामीने इसी लोक-धर्माश्रित भक्ति का सचार करके महाराष्ट्र शक्ति का अभ्युदय किया।' (गो. तुलसीदास–लोकधर्म')

सुप्रसिद्ध प्रा. रा. द. रानडे अपनी अध्यात्मग्रन्थमालाकी प्रस्तावनामें महाराष्ट्रीय सन्तोंके कार्यका उल्लेख करते हुए लिखते हैं-"ज्ञान भक्ति और कर्मका त्रिवेणीसंगम अगर कही है तो हमारे महाराष्ट्र साहित्यमे ही है। ज्ञानेश्वर जैसे ज्ञानी, नामदेव और तुकाराम जैसे भक्त और रामदास जैसे कर्मयोगी हमारे महाराष्ट्र में ही पैदा हुए।......जिस प्रकार बाइबिलका अध्ययन साहित्यिक दृष्टिसे किया जाता है, उसी प्रकार हमारे इन सन्तो के ग्रन्थोंका अध्ययन होना आवश्यक है।"

आगे चलकर इन के चरित्रकी ओर अपना दृष्टिकोण किस प्रकार होना चाहिए यह बतलाते हुए आप लिखते हैं कि 'चमत्कारोंकी दृष्टिसे इन सन्तोंके चरित्रकी ओर ध्यान देने की अपेक्षा उनके ग्रन्थों की उक्तियो की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए और इस प्रकार देखने से उनके ग्रन्थों में बुद्धिवाद के योग्य अनुभव हमें मिलेगा।'

श्री समर्थ रामदास स्वामी के समयमें समस्त भारतवर्ष की दशा दयनीय थी। इस हीन दीन स्थितिका अवलोकन करके उन्होंने स्वयं आत्मानुभवमे लीन रहते हुए भी स्वधर्म की संस्थापना करनेका निश्चय किया और जनता में व्यक्तिगत और राष्ट्रीय गुणोंका संवर्धन किया। सैंकडो वर्षों की पराधीनता, दौर्बल्य और उदासीनता नष्ट करके लोगो को प्रयत्नवादका पाठ पढ़ाकर उन्होंने जनता को सन्मार्गगामी और कर्तव्यदक्ष बनाया। ऐसे तेजस्वी और चोटीके सन्त के चरित्र को हम अब प्रस्तुत करेंगे।

कुलवृत्तान्त।

संवत् १०१९ में अराजकता तथा अकाल के कारण पीड़ित किन्तु सच्छील एक परिवार पवित्र गोदावरी नदीके दक्षिण तीरपर बीड प्रान्त के हिवरे (तालखेडे) नामक ग्राम में वेदर से आकर बस गया। यह परिवार बहुत बड़ा था।

इस ठोसर (उपनाम) परिवार के मूल पुरुष का नाम कृष्णाजीपन्त था। ये जामदग्न्य गोत्र में उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद इनका वेद और सूत्र आश्वलायन था। ये देशस्थ ब्राह्मण थे। अपने पटवारीपन और पौरोहित्य के कार्य में व्यवस्थित एवं होशियार होने के कारण ये बहुत प्रसिद्ध थे। इनकी आय भी बड़ी थी। इनके केशव (कचोपन्त), राघो, हरि, आत्माराम, और दशरथ नामक पांच पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र 'हिवरे' ग्राममें, दूसरे 'गुंज' ग्राममें, तीसरे और चौथे 'देहगांव' ग्राममें बस गये। प्रत्येक पुत्रको बारह बारह ग्राम पौरोहित्य के लिए मिले। सबसे छोटे पुत्र दशरथने इसमें कुछ हिस्सा नहीं लिया।

हिवरे ग्राम में कृष्णाजीपन्त ज्येष्ठ पुत्र केशव के पास रहा करते थे। दशरथ हिवरे ग्राम से छः मील दूरीपर वडगांव के पढपाण्डर नामक भाग में लखमाजी ग्वाल के पास में ही एक कुटिया बनाकर उस में रहने लगे। दशरथ पटवारीपन, पौरोहित्य आदि संम्हालते थे। उन्होंने लखमाजी ग्वालको मुखिया बनाया और कसबे वडगांव ग्राम का नाम बदलकर 'जाम्ब' रखा।

संवत् १०४० तक उन्होंने यहाँ धीरे धीरे बारह ग्राम बसाये। दौलताबाद सूबेका 'आनेगुन्दीकर' के राज्य का यह हिस्सा था। ज्येष्ठ पुत्र केशव कृष्णाजीपन्तकी मृत्यु के पश्चात् संवत् १०४४ में हिवरे ग्राम छोडकर जाम्ब ग्राम में आ गये। दशरथका परिवार भी बहुत बड़ा था। इनके छः पुत्र थे- रामाजीपन्त, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमन्त और वासुदेव। रामाजीपन्त को जाम्ब, आसनगांव पौरोहित्य तथा पटवारीपन के लिए मिले। इसी प्रकार प्रत्येक पुत्र को दो दो ग्राम मिले। रामाजीपन्त के वंश में ही श्री समर्थ रामदास स्वामी उत्पन्न हुए।

वंशवृक्ष

१ कृष्णाजी

- केशव, रावो, हरि, आत्माराम, २ दशरथ (दादापन्त)

२ दशरथ (दादापन्त) —

- ३ रामाजीपन्त, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमन्त, वासुदेव

३ रामाजीपन्त
४ हरि
५ निराजी
६ शिवाजी
७ विष्णु
८ ब्राह्मणाजी (ब्रह्माजीपन्त)
९ आत्माराम (इन्हें और पाँच ग्राम मिले)
१० गणेश
११ धोंडो
१२ आत्माराम
१३ गुंडो
१४ निराजी
१५ आत्माराम
१६ शिवाजी
१७ विष्णु
१८ केसो
१९ रामाजी
२० मानजी
२१ सूर्याजी
२२ त्र्यंबक
२३ सूर्याजी

२३ सूर्याजी —
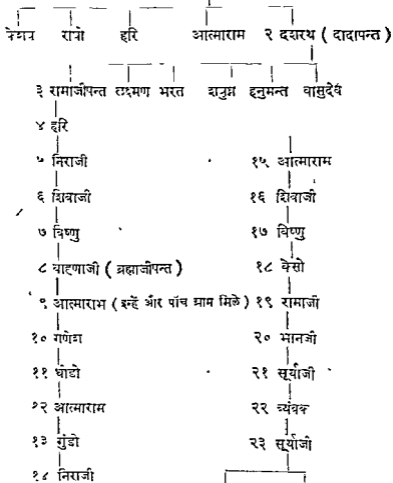
- गंगाधर (श्रेष्ठ), नारायण (श्री समर्थ रामदास) (श्रीसमर्थावतारसे).

कृष्णाजीपन्त का समय चातुर्वर्ण्याश्रम का था। ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेज से दीप्त था वैसा ही क्षत्रिय अपने तेज से। बीच के काल में अर्थात् कृष्णाजीपन्त से सूर्याजीपन्त के समय तक बहुत ही परिवर्तन हो गया था। जैन, लिंगायत, महानुभाव आदि पंथों का प्रचार; आपस में धर्मसम्बन्धी मतभेद; मुसलमानों का आक्रमण; इन सब कारणों से जनता त्रस्त तथा ग्रस्त थी। वैदिक धर्म का आचरण करने की ओर बहुजन समाज की प्रवृत्ति बहुत ही कम थी। सूर्याजीपन्त के समय तो चातुर्वर्ण्य संस्था धीरे धीरे अपना बल छोड़ने लगी थी। बहुत से ब्राह्मणोंने अपना आचार विचार छोड़ दिया था। उनका तप-तेज धीरे धीरे कम होने लगा था। फिर भी उस समय सूर्याजीपन्त जैसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्ययुक्त तपस्वी थे ही।

सूर्याजीपन्त प्रति दिन एक हजार दो सौ तक सूर्य नमस्कार, गायत्री जप, आदित्य हृदय स्तोत्र का पाठ लगातार बारह वर्षतक भक्तिपूर्वक करते रहे। उपासना के कार्य में बाधा न हो इसलिए वे पटवारीपनका कामकाज भी रात्रि के समय करते थे। सूर्याजीपन्तकी यह अटल श्रद्धा देख श्री सूर्य नारायण प्रसन्न हुए और ब्राह्मण के रूप में आकर उन्हें वरदान दिया कि तुम्हारे दो विख्यात पुत्र होंगे।

२

जन्मकाल।

जिसकी स्थिति धर्म पर ही निर्भर है। समाजका अभ्युदय और निःश्रेयस जिससे होता है उसे ही धर्म कहते हैं। जब धर्मका पालन ठीक ठीक नहीं होता तब समाजमें तप, तेज, बल, वीर्यकी वृद्धि नहीं होती। अभ्युदयकी गति रुक जाती है, निःश्रेयस तो दूर ही रहा; प्रत्युत् समाजका अधःपतन होने लगता है। दुष्ट और स्वार्थी प्रवृत्तियोंका बाहुल्य हो जाता है।

सत्रहवीं सदी के पाँच शतक के पूर्वकालसे उत्तर भारत मुसलमानोंके आक्रमण एवं अत्याचारोंसे पीडित था। महम्मद कासिम, गजनी, गोरी और मलिक काफूर से लेकर औरंगजेब तक मुसलमानोंकी सत्ता

भारत के लिए एक जबर्दस्त फॉस बन रही थी। उससे छुटकारा पानेका कोई भी साधन नहीं था। धार्मिक क्षेत्रमें उस समय उत्तर भारतका तत्कालीन समाज सूर, तुलसी आदिसे नवजीवन प्राप्त कर रहा था। फलस्वरूप अपना धर्म पूर्णतया स्थापित करने की परधर्मियोकी, आकांक्षा नष्ट हो गयी थी। अब औरंगजेब की दृष्टि महाराष्ट्र की ओर गयी। चारों तरफ से आक्रमण करने की उसमें आकांक्षा थी। इस समय बहामनी राज्य पांच राज्यों में विभक्त हो गया था। इन राज्यों से भी महाराष्ट्र त्रस्त था। यहाँ मराठा सरदारों में आपस में द्वेष भाव और फूट थी। कभी कभी वे मुसलमानो की मदद लेकर अपने प्रतिपक्षी को परास्त करते थे। कुछ सरदार ईमान से परधर्मियो की सेवा करते थे। ऐसी परिस्थिति में हिन्दू समाज की हालत बहुत खराब थी। न कोई योग्य शास्ता था और न कोई अधिकारी मार्गदर्शक ही।

सामाजिक जीवन में भी लोगों की अवस्था वैसीहा थी। राग रंग में व्यस्त हो जाने के कारण समाज दुर्बल हो गया था। कोई किसी की परवाह नहीं करता था। समाज के संगठित न होने के कारण बहू बेटियों की लज्जा का रक्षण नहीं होता था।

धार्मिक मतभेद तो एक झगडे का केन्द्र ही बन गया था। तथापि कुछ लोग वैदिक धर्म में विश्वास रखते थे किन्तु नियमीं शासनके कारण उस का आचरण नहीं कर सकते थे। समाज में तेज, तप, बल की वृद्धि नहीं होती थी। दूसरा भी एक वैगदय का कारण था। मतों के उपदेश के अनुसार लोगों का आचरण नहीं था। लोगों की प्रवृत्ति लोकधर्म की ओर नहीं थी। धीरे धीरे बाहुबल, आर्थिक और नैतिक बल, इन तीनों बलों से समाज क्रमश रहित होता जाता था।

ऐसे समय में समाज को संगठित तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टया बलवान करने के लिए किसी अधिकारी मार्गदर्शक की आवश्यकता थी जिस की पूर्ति प्रस्तुत चरित्र नायक के द्वारा हुई।

गोदातीर के उत्तर में छ मील दूरी पर स्थित जाम्ब ग्राम के तपस्वी भक्त सूर्याजीपन्त की पत्नी श्री सूर्यनारायणकी कृपा से दूसरी बार गर्भवती हुई।

नवमास पूर्ण होनेपर संवत १६६५ (चैत्र शुक्ल नौमी शक १५३०') के चैत्र में रामजन्म के समय दो पहर को राणूबाई की कोख से सुन्दर पुत्ररत्न पैदा हुआ। उसी समय ग्राम के मन्दिर में रामावतार का समारोह चल रहा था। पुनर्वसु नक्षत्र के चौथे चरण में इस बालक का जन्म हुआ। बालक श्री सूर्यनारायण की कृपा से पैदा हुआ इसलिए उसका नाम नारायण रखा गया।

४

बाल्यकाल।

सूर्याजीपन्तका व्यवसाय पौरोहित्य और पटवारीपन का था। अच्छे शिक्षित होनेके कारण वे अपने लड़कों को उस कालके अनुसार शिक्षा दीक्षा देते थे जैसे स्तोत्र और नीतिशास्त्रके संस्कृत श्लोक आदि कण्ठस्थ करना।

गंगाधर (बड़ा लड़का) अब उम्र में बढ़ गये थे। पाँचवे वर्ष में उनका यज्ञोपवीत संस्कार और सातवें में अम्बडकर देशमुखकी कन्या पार्वती-बाई के साथ विवाह हो गया था। उस समय नारायण की उम्र चार वर्ष की थी। नारायण की तेज बुद्धि तथा चपलता देखकर सूर्याजीपन्त प्रसन्न होते थे। कोई भी पाठ एक बार पढ़ानेपर कण्ठस्थ हो जाता था। 'समर्थ प्रताप' कार गिरिधरजी लिखते हैं—

" अक्रा घट्यांत केलें धुळाक्षर। अक्रा प्रहरांत चळविलें अक्षर।
अक्रा दिवसांत केला जमाखर्च सुंदर। ब्रह्माण्ड कुळकर्ण चालवावया॥
(स. प्र. २।१७)

ग्यारह घटिकाओं में धूलकी तख्ती पर (उन्होंने) अक्षर सीख लिया तथा ग्यारह पहरों में अक्षर को सुन्दर बनाया। ग्यारह दिनों में अखिल विश्व का पटवारीपन करने के लिए उन्होंने आयव्यय (हिसाब किताब) अच्छी तरह सीख लिया। "

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ज्ञानेश्वरी के छटवे अध्याय में लिखते हैं—

" तैशी दशेची वाट न पाहतां। वयसेचिया गांवा न येतां॥
बाळपणींच सर्वज्ञता। वरी तयातें॥ ४५३॥

अर्थात् वैसेही, प्रौढ अवस्था की प्रतीक्षा न करके और बडा न होनेपर भी बाल्यावस्था में ही उस योगभ्रष्ट को सर्वज्ञता वरण करती है।" ऐसे योगभ्रष्ट पुरुष अपने पूर्वजन्म के पुण्य के बलपर ही सत्कुल में जन्म लेते हैं और बाल्यकाल में पैनी बुद्धि के होते हैं।

इस प्रकार नारायणने पढने में बहुत शीघ्र प्रगति की। उन के अक्षर बहुत ही सुन्दर थे। डामगाव के मठ में कल्याण स्वामी को इन का दिया हुआ कित्ता (अच्छे अक्षर का नमूना) मिलता है। नारायण प्रत्येक खेल में बहुत चपल थे। गोलियां खेलने में तो ये अत्यन्त चतुर थे। वृक्षों की टहनियोंपर इधर से उधर कूदना, सीधे टेढे वृक्षोंपर बिना किसी भय के चढना, पानी में तैरना, यह सब नारायण अच्छी प्रकार जानते थे। इनकी भोजन की अपेक्षा फलाहार में अधिक रुचि थी। नारायण को योग्य देख सूर्याजीपन्तने उनका यज्ञोपवीत संस्कार विधिपूर्वक किया। इस समय उनकी उम्र पाँच वर्ष की थी। यद्यपि नारायण पुरुषसूक्त, रुद्र, वैश्वदेव आदि नित्य ब्रह्मकर्म भली भाँति जानते थे तथापि उनकी प्रवृत्ति अधिक तर खेलने कूदने, सूर्यनमस्कार, दण्ड बैठक, कुश्ती लडने और निरीक्षण करने की ओर ही थी।

नारायणकी तीव्र बुद्धि, अलौकिक शक्ति तथा युक्ति का परिचय हमें निम्न लिखित प्रसंगो से मिलता है।

(१) किसी समय एक दिन शामको उनके घर उस गाँवके मुखिया पधारे थे। बैठने के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था। मुखियाने सूर्याजीपन्तसे मजाक में कहा कि आप लोगोंके देवगृह में सब अध्यात्म का कार्य तो हो रहा है किन्तु किसी अतिथिके आनेपर उसके बैठने का तो अलग प्रबन्ध होना चाहिए न! उनके जाने के बाद शीघ्रही अपने चुने हुए आठ साथियोंको साथमें लेकर नारायणने लकडी तोडकर तख्ते आदि सब सामग्री एकत्र की और उसका एक अच्छा दीवार बनायी। यह काम मध्य रात्रि तक समाप्त होगया। प्रात कालमें बैठककी अलग व्यवस्था हो गयी। मुखियाने दूसरे दिन प्रात कालमें देखा तो वे आश्चर्यचकित हो गये। नारायण की ओर देखकर बडी प्रसन्नतासे उन्होंने कहा ऐं, एकही रात्रिमें तूने यह काम कैसे किया! आश्चर्य है! माना एक ही रात्रिमें द्रोणाचल लाया गया है!

(२) इनके भाई गंगाधर (श्रेष्ठ) सांसारिक कामोंको देखते थे। किन्तु नारायण का ऐसे कामो की ओर ध्यान नहीं था। यह देख एक बार उनकी माता कहने लगीं कि गंगाधर तुझसे तीन वर्ष उम्रमें अधिक है। उसको व्यवहारीका काम भी देखना पड़ता है, इसलिए तू घरकी थोड़ी (देख-भाल तो करता जा, सांसौरिक कार्य की ओर तो थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है। यह सुनते ही नारायण कहीं छिपकर एक कमरे मे जा बैठे। बाहर और घर में ढूँढने पर वे कहीं न मिले। अन्त में माता उस कमरे मे कुछ वस्तु लाने गयीं तब वहाँ नारायण ध्यान लगाकर बैठे हुए दिखाई पड़े। ए! इस एकान्त स्थल मे यह तू क्या कर रहा है!' पूछे जाने पर नारायण बोले 'माँ, मैं विश्वकी चिन्ता कर रहा हूँ।' सच है, ऐसे महापुरुष ही विश्वकी चिन्ता करते हैं।

(३) नारायण से एक बार माताने पूछा कि तू अब समझदार कब होगा? नारायण के समझदार का अर्थ पूछनेपर माताने कहा कि समझदार तब कहते हैं जब कि धन धान्य आदि सम्पादन कर के घर लाया जाता है। दूसरे दिन नारायण एक किसान के खेत में गये और सवा मन से भरा हुआ अनाज का एक थैला स्वयं घर ले आये!!!

उन्होंने इस काल में यज्ञकर्म आदि विषयों के अतिरिक्त किन ग्रन्थों का पठन या श्रवण किया इस के सम्बन्ध में यद्यपि पुराने चरित्र ग्रन्थों में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है, तथापि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन के पिताजी महान भगवद्भक्त थे, जिस से नारायणने उनके द्वारा रामायण, महाभारत, भागवत आदि की कथाएँ बड़े चावसे सुनी होंगी। रावण जैसे दुष्टों के प्रति तिरस्कार और मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी तथा उनके भक्तों के प्रति श्रद्धा का असर नारायण के बालमन पर निश्चित रूप से दृढ़ होता गया होगा। नारायण संसारकी बुराइयों को देखकर उससे धीरे धीरे निवृत्त होते जा रहे थे। ग्राम के बाहर दूर जाकर एकान्त मे बैठना उन्हें बहुत पसन्द था।

इस प्रकार नारायण की मानसिक शक्ति प्रति दिन विकसित हो रही थी। शारीरिक शक्ति में तो कोई भी लड़का उनकी सानी नहीं रखता था। इतनी

छोटी आयुमें आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों का विकास होना, योगभ्रष्ट के लिए ही सम्भव है।

५

भगवत् कृपा।

सामान्य व्यक्तिपर भगवत् कृपा नहीं होती। इस के लिए असामान्य या दैवी गुणों से युक्त व्यक्तिकी आवश्यक्ता होती है। तीव्र बुद्धि, अनन्य भाव, उत्तम ग्रहण, प्रबल उत्साह, उत्तम शक्ति और युक्ति आदि गुणों से नारायण युक्त थे। ऐसाही व्यक्ति संसार में अलौकिक कार्य कर सकता है।

नारायण का यह बाल चरित देख सूर्याजीपन्त मन ही मन सन्तोष मानते थे। सच है कि ऐसा कौनसा पिता है कि जिस को अपने पुत्र के सद्गुणों को देखकर सन्तोष नहीं होता। सूर्याजीपन्त को श्री सूर्यनारायण के आशीर्वाद से पूर्ण विश्वास हुआ था कि उन के दोनो पुत्र कीर्तिमान होंगे।

गंगाधर को हनुमानजी के देवालय में 'हनुमान कवच' का पाठ करते समय भगवत् कृपा हुई। तबसे वे 'रामी रामदास' नाम से कहे जाने लगे। ये अत्यन्त सत्त्वशील भक्त थे। सूर्याजीपन्त का कुल ऐसा ही पवित्र था कि जिस में अपवित्रता के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। उनकी रहन—सहन सादगी लिए हुए थी। वे न्यायी, नीतिमान और प्रेमी थे। ऐसे परिवारका एक व्यक्ति होने के कारण नारायण का मन पहलेसे सुसंस्कृत होना स्वाभाविक ही है। पिताजी और ज्येष्ठ बन्धुकी अनन्य भक्तिका आदर्श उनके सामने था। नारायण भी अनन्य भक्तिमें इन दोनों से कम नहीं थे।

एक बार ऐसा हुआ कि इनके बन्धु गंगाधरपन्तने किसीपर अनुग्रह किया। यह देखकर नारायण भी अनुग्रह के लिए बन्धुसे प्रार्थना करने लगे किन्तु उन्होंने कहा कि अभी अनुग्रहका समय नहीं आया है। कहा जाता है कि नारायण इससे नाराज हुए और तुरन्त ही हनुमानजी के मन्दिरमें जाकर

ध्यानस्थ हो गये। स. १६७३ के श्रावण मासमें नारायणपर भगवत् कृपा हुई। इस समयसे वे 'रामदास' कहलाये।

भगवत् कृपाकी तिथि वर्ष आदिके सम्बन्धमें मतभेद पाया जाता है। 'रामदासांचें स्वचरित्र कथन' नामक कवितामें रामदासजी अपनी उपासना और पिताजी की समाधिके सम्बंधमें लिखते हुए गुरुमंत्र की घटना का इस प्रकार वर्णन करते हैं 'हमारे कुलमें राघवकी उपासना चली आ रही है। श्री रामचंद्रजी की भक्ति सुखका विश्राम है। श्री रामचंद्रजी की भक्ति करते करते पिताजीका वैकुण्ठवास शांतिके साथ हुआ। ज्येष्ट बंधु (श्रेष्ठ) ने अनुग्रह नहीं किया इसलिए हनुमानजी के मंदिरमें जाकर योगनिद्रा की। श्रीरामचंद्रजीने रामदासको जाग्रत करके एकांत में उपदेश देकर मंत्र खोल दिया और गुरु परम्परा भी कही।

रामदासजी के खास शिष्य दिनकर के 'स्वानुभव दिनकर' नामक ग्रन्थ के सोलहवें कल्लाप में इस प्रकारका वर्णन मिलता है कि "एक बार इनके पिताजी छः मील दूर नदीपर स्नान करने गये थे। इधर घर में एक चमत्कार हुआ कि वानर के वेष में एक गण आकर नारायण को अरण्य में ले गया। उस समय नारायण की आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी। किन्तु अनेक जन्म का पुण्य था और योगभ्रष्ट होने के कारण वृत्ति भी चंचल नहीं थी। उस अरण्य में नारायण डरके मारे भयभीत हो गये। इतने में एक अभूतपूर्व चमत्कार दिखाई पड़ा। मेघवर्ण ऐसे दो तेजस्वी क्षत्रिय पुरुष और एक स्त्री शिबिका में बैठी थी। उस दूतने नारायण को ले जाकर उनके सामने खड़ा किया। राजस्थानी भाषा में उन्होंने कुछ पूछताछ की। नारायणने ठीक ठीक उत्तर दिया। प्रभु प्रसन्न हो गये और नारायण को प्रेमसे आलिंगन करके उनके हाथमें अपनी मुहर से अंकित एक पत्र दिया। बादमें, उन्हों ने महावाक्यका उपदेश देकर नारायण के मस्तकपर अपना वरदहस्त रखा। हुर्मुजी रंगका वस्त्र शीत निवारण के लिए और बाऐं हाथ में अर्धचन्द्र बाण देकर वे अदृश्य हो गये। इस घटनाके पश्चात् नारायणने एक वर्ष पर्यंत मौन धारण कर लिया। इधर पिताजी, चार ज्येष्ठ बन्धु, नारायण को इधर उधर ढूंढने लगे, तो नारायण अकस्मात ब्रह्मारण्य में मिल गये। वस्त्र और पत्र देखने पर पिताजीने ताड़

कि या कि नारायण पर श्री रामचन्द्रजी की कृपा हुई है और उसी आनंद में पिताजी लीन हो गये। थोडे ही समयबाद उसी दिन पिताजीने वैकुण्ठवास किया।

इस प्रकार नारायण पर भगवत् कृपा हुई और वे धन्य हो गये। अब उनका सारा ध्यान रामचद्रजी की ओर लग गया। प्रभु रामचद्रजी के ध्यान के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य ही नहीं था।

भगवत् कृपा के बिना तीनो लोको का राज्य भी व्यर्थ है। उसके बिना ससार का मान सम्मान सभी व्यर्थ है। भगवत् कृपा भक्त का सहारा है, बल है, आस है, विश्वास है, विश्राति है, सब कुछ है। जिस व्यक्ति पर भगवत् कृपा नही होती उसका जीवन, जीवन नहीं बल्कि एक दीर्घ स्वप्न है। भगवत् कृपा प्राप्त करने के लिए जो कभी यत्न ही नहीं करता उसका इस ससार में न तो इह लोक साध्य होता और न परलोक ही।

६

वैराग्य।

भारतवर्ष में विरागी वृत्ति की कमी नहीं है। प्राचीन काल में शुकदेव, जडभरत, जनक आदि और अर्वाचीन काल में शकराचार्य, ज्ञानेश्वर, नामदेव, सत तुलसीदास, एकनाथ, तुकाराम आदि जैसे विरागियों का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित है। ससार से विरक्त होकर भगवान से अनुरक्त होना, इस का नाम वैराग्य है।

ससार से विरक्त होने का अर्थ यह नहीं कि ससार से अपना नाता तोडना बल्कि विषय वासनाओं में लिप्त न होना। अनासक्त होकर ससार में लोक कल्याण का कार्य करना और इश्वर में अनुरक्त होना। रामदासजी को नमन करते हुए कवि कहते हैं कि—

"शुकासारखें पूर्ण वैराग्य ज्याचें। वसिष्ठापरी ज्ञान योगेश्वराचें।
कवि वाल्मिका सारिखा मान्य ऐसा। नमस्कार त्या सद्गुरु रामदासा॥

अर्थात् जिनका वैराग्य श्री शुकदेव के समान पूर्ण है; जिनका ज्ञान वसिष्ठ के जैसा अगाध है; जिनकी कविता वाल्मीकि जैसी मान्य है उन श्री सद्गुरु रामदासजी को मेरा प्रणाम है।"

उपर्युक्त उक्ति से रामदासजी के वैराग्य, ज्ञान और कवित्व की कल्पना आ जाएगी। सच है कि रामदासजी को भगवत् कृपा होने के बाद संसार के बुरे ढंग देखकर उससे उदासीनता आगयी थी। आत्मकल्याण के लिए उन्होंने अपने संसार का होम किया। वे चाहते थे कि इस अमूल्य नर देह को प्रत्येक व्यक्ति सार्थक करे।

माँ के लाख प्रयत्न करने पर भी वह उदासीनता किसी अंश में कम नहीं हुई। नारायण विवाहित होने के लिए तैयार न थे। एक बार माँ ने कहा, नारायण! तू अब उम्र में अधिक हो गया है, गंगाधर की मदद क्यों नहीं करता? मैं अब बूढ़ी हो गयी हूँ। एक सुंदर लड़की के साथ तेरा विवाह कर दूंगी। ऐसी बातें सुनने के बाद नारायण सीधे नदी के दहर में जाकर कूद पड़े। ढूंढ़ने पर वे कहीं न मिले। अंत में 'इस दहर में कूद पड़े होंगे' ऐसी आशंका लोगों को हुई और नारायण की माँ ने जोरसे 'नारायण' नाम से दो चार बार पुकारा और उनसे ऊपर आने के लिए कहा। 'मैं अब तुझे विवाहित होने के लिए आग्रह नहीं करूंगी' ऐसा वचन देनेपर नारायण बाहर आये। बाहर आते समय एक बड़ी शिला के साथ उनका मस्तक टकराया, फलस्वरूप माथेपर एक गुमटा उभड़ आया। वह चिह्न उन के भाल की दाहिनी ओर जीवनभर बना रहा। श्रेष्ठ को नारायणका स्वभाव भली भाँति ज्ञात था। माँ से वे कहते थे कि इस तरह नारायणको विवाहके सम्बन्धमें सतानेपर कहीं वह भाग जाएगा। परन्तु माँ से रहा नहीं गया। एक समय नारायणको बुलाकर उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा कि नारायण "तू मेरी इतनी तो बात सुन ले ब्राह्मणोंद्वारा विवाहका अंतर्पट पकड़नेतक तू विवाहित होनेसे इन्कार मत कर। 'न मातुःपरदैवतम्' कहकर रामदासजीने आज्ञा मान ली।

विवाहकी तैय्यारियाँ हो रही थीं। पौने दो मील दूरीपर आसनगांव नामक ग्राममें माँ के बंधु श्री भानजी बोदलापुरकर की कन्या वधू निश्चित हो गयी।

बारात आसनगाव गयी। विवाह की तिथि फाल्गुन शु ८ थी। विवाह सम्पन्न होनेके ठीक समयपर ब्राह्मणोंके 'शुभ मङ्गल सावधान' बोलते ही नारायण गंभीरतासे विचार करने लगे। यह देख मज़ाक में किसी एकने कहा कि 'अब तुम्हारे पाँवमें सदा मनकी शृखला पड़ेगी।' ये शब्द सुनतेही नारायण सचमुच सावधान हो गये। तुरन्त कूदकर वे हनुमानजी के समान मनोवेगसे भाग गये।

लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। नारायण को सब ढूँढ़ने लगे, पर कहीं न मिले। इतने छोटे बारह बरस के लड़के के भाग जानेपर कोई भी उसको पकड़ न सका। देखिए! कितनी शक्ति, युक्ति और दौड़ने का वेग रहा होगा? यह सचमुच एक चमत्कारपूर्ण घटना है! भागते समय उनके शरीर पर एक दुपट्टा और एक धोती थी।

सुन्दर लड़की को देखकर मोहित न होना, यह संसार के बाहर की बात है और रामदासजी के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ। रामदासजी ससार से उदासीन हो गये थे। किन्तु माँ को कैसे टालें? सो इन्होंने इस समय माँ की आज्ञा हूबहू मान ली और अन्तर्पट पकड़ते ही तथा 'शुभ मङ्गल सावधान' कहते ही वे भाग गये। देखिये? इसी को कड़ा वैराग्य कहते हैं। सुप्रसिद्ध कवि मोरोपन्त रामदासजी को प्रणाम करते हुए लिखते हैं कि—

"द्विज सावधान ऐसें सर्वत्र विवाह मङ्गलीं म्हणती।
तें एक रामदासें आयकिलें त्या असो सदा प्रणती॥

अर्थात् ब्राह्मण विवाह के मङ्गल प्रसग में 'सावधान' कहते है परन्तु रामदासजीने ही उसका पूर्णतया पालन किया। ऐसे रामदासजी को मेरा प्रणाम है।" इस घटना से निश्चय ही महाराष्ट्र का भाग्यसूर्य उदित हुआ जिस प्रकार सन्त तुलसीदास के झट् वैराग्य धारण करने पर उत्तर भारत का हुआ था।

रामदासजीने इस प्रकार माँ का वचन सत्य किया। माँ को आशा थी की नारायण इस तरह कही भाग नहीं जाएगा, किन्तु सब विपरीत ही हो गया। माँ बहुत दु खी हो गयीं। श्रेष्ठ का वचन सत्य हुआ। रामदास ससार के

पाश से मुक्त हो गये किन्तु उनके भागने के बाद वधू के पिता आदि सभी लोगों को इस घटना से अत्यन्त दुःख हुआ। इधर उधर ढूँढनेपर नारायण कहीं न मिले। माँको इतना दुःख हुआ कि वे रो रोकर अन्धीसी हो गयीं।

रामदासजीने विचार किया कि भाग जाने का और माँ को दिया हुआ वचन पालने का यही एक अवसर है। यदि यह अवसर व्यर्थ चला जायगा तो श्रीरामचन्द्र प्रभुका सख्य नहीं प्राप्त होगा, और नरदेह भी सार्थक नहीं होगा। ये स्वयं कहते हैं:—

"देवाच्या सख्यत्वासाठीं। पडाव्या जिवलगांसी तुटी।
सर्व अर्पावें सेवटीं। प्राण तोहि वेचावा॥ (दा. ४।८।८)

ईश्वर का सख्य प्राप्त करने के लिए चाहे प्रिय व्यक्तिका भी वियोग क्यों न हो, सब कुछ अर्पण कर अन्तमें प्राणका भी बलिदान करनेको तैय्यार रहना चाहिए।

नारायणके भाग जानेपर श्रेष्ठने अपनी दुःखित माताको सान्त्वना दी। बादमें वे भी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लग गये। भक्तिरहस्य, सुगमोपाय आदि ग्रन्थोंको लिखकर भक्ति, उपासना का कार्य करते हुए 'श्रेष्ठ' जाम्ब में ही रहते थे।

श्री शुकदेव, शंकराचार्य और ज्ञानेश्वर महाराज इनका वैराग्य तो निश्चित रूपसे कड़ा था। इन्होंने सांसारिक कर्मोंकी ओर दृष्टितक नहीं फैलायी। एकनाथजी सांसारिक कर्म करते हुए विरक्त थे। सन्त तुकारामने संसारका सब बोझ श्री पाण्डुरंग पर ही छोड़ दिया था। सन्त तुलसीदासजीने स्त्रीके फटकारने पर अपना संसार छोड़ा। सत्यकी खोजके लिए गौतम बुद्धने अपनी पत्नी तथा पुत्र और राज्यका त्याग किया। ईश्वरकी प्राप्तिके लिए इस प्रकार विवेकपूर्वक वैराग्य धारण करना, सन्तोंका स्वभाव ही है। वैसेही रामदासजीने मोहका पर्दा दूर कर वैराग्य धारण किया

आश्वासन और आशीर्वाद ।

"न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः ।"

धीर लोग अपने निश्चयसे कभी नहीं टलते। परमात्माको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे रामदासजीने स्वजनों का-जो कि प्रायः परमार्थ प्रेमियों के लिये दुखद ही सिद्ध होते हैं-त्याग कर दिया।

कहा जाता है कि भागने के बाद रामदासजी जाम्ब ग्राममें ही तीन दिनोंतक अश्वत्थ वृक्षपर छिपे हुए थे। तत् पश्चात् गंगापार हुए। जाम्बकी पंचवटीसे, नासिक की पंचवटी की ओर नदीके किनारे किनारे जाने लगे। यात्रामें कई अड़चनें उपस्थित होती थीं। खानेका प्रबन्ध नहीं था। कही कहीं केवल कन्द-फल-मूल थे, पाँवमें जूते नहीं, रास्तेमें कंटक आदि बाधा करनेवाले थे ही। किन्तु तीव्र वैराग्य और तितिक्षा के साथ केवल श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सारा ध्यान लगने के कारण मार्ग के कष्टोंकी ओर रामदासजीका चित्त नहीं था। अनन्य भक्तोंकी रक्षा भगवान सदैव करते है। भीम स्वामीका कथन है कि सात दिनोंतक अन्न-पान-शयनका स्मरण ही नहीं था। 'वाकेनिशी टिप्पण' में लिखा है कि प्रत्येक दिन रुकते रुकते अठारह दिनोंके बाद संवत् १६७७, में (शक १५४२ चैत्र शु॥ १) पंचवटी (नासिक) आ पहुँचे।

पंचवटीमें उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी मूर्ति मन्दिरमें दीख पड़ी। भक्तकी आँखोंसे उसका आराध्य दैवत कभी ओझल नहीं होता, तथापि सगुण रूप देखनेपर वह उसमें और तल्लीन हो जाता है। वृत्ति तदाकार हो जाती है। रामदासजी विवाह स्थलसे भाग गये। किसलिए? एक कार्यके लिए और वह था श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना। श्रीरामचन्द्रजीका स्तुतिस्तोत्र तो वे मार्गमें गा ही रहे थे। ऐसे प्रसंगमें श्रीरामचन्द्रजी एक मात्र आश्रय थे।

संसारमें लिप्त होनेपर ईश्वरकी याद नहीं आती बल्कि उसका विस्मरण हो जाता है। माया-मोहमें आसक्त होनेके कारण अपने कर्तव्यको मनुष्य भूल जाता है। रामदासजीने सोचा कि एक बार संसारमें लिपट गया तो वह संसारके

बाहर कभी नहीं हो सकेगा, ऐसा वह माया मोह है! जिससे अपने आराध्य देवताका वियोग हो ऐसा प्रसंग एक बार भी न आने पावे।

मन्दिरमें वे उचित समयपर पहुँचे। रामनौमी के समारोह का वह पहला दिन था। नासिक पंचवटी के समारोह में इस समय सम्मिलित होने का वह कितना अहो भाग्य था? आनन्द का पारावार नहीं था। अब वियोग कैसे होगा? दूसरा कुछ भी सहा जाएगा किन्तु रामचन्द्रजी का वियोग नहीं सहा जाएगा। उन्होंने सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। प्रिय माता, बन्धु अथवा किसी भी वस्तुकी याद नहीं थी। 'आत्म समर्पण' अनन्य भक्त का प्रमुख लक्षण है। बिना इसके भक्त की अवस्था पूरी नहीं होती।

मन्दिरमे पहले दिन दर्शनार्थियों की भारी भीड़ थी। उनके दर्शन करने के पश्चात् भीड़ कम होने लगी और अब रामदासजी को अच्छा अवसर मिला। उन्होंने मानसपूजा आरम्भ की। बाहरी पूजा की अपेक्षा मानसपूजा का महत्त्व बहुत अधिक होता है। बाहरी पूजा करते समय पूजा करनेवाले का चित्त चंचल भी होने की सम्भावना रहती। है। यहाँ पूजा करनेवाला तल्लीन हो जाता है। सभी प्रकार की सामग्री उसके मनमें उपस्थित हो जाती है। यदि चित्त चंचल हो गया तो मानसपूजा का फल चलाजाता है। अतः मानसपूजा हमेशा एकाग्र चित्तसे ही की जा सकती है। रामदासजी के पास पूजा करने के लिए अब सामग्री कहाँ! फल कहाँ! फूल कहाँ! अतः उन्होंने मानसपूजा आरम्भ की और उसी में वे क्षणमात्र मे तल्लीन हो गये। इस प्रसंग का गिरिधरजी यों वर्णन करते हैं:—

"समर्थ मिठी घातली चरणकमळीं। येक मुहूर्त मानसपूजा सम्पूर्ण केली। उठोनि सप्रेमें डोळा जव देखिली। तवं ब्रह्मगोळीं परिपूर्ण श्रीराम पूजिला॥
(स. प्र. २-८२)

अर्थात् रामदासजीने श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलोंपर आत्मसमर्पण किया। एक मुहूर्त अर्थात् डेढ़ घण्टे में अपनी मानसपूजा समाप्त की। उठकर उन्होंने आँखें खोलकर प्रेम से वह मूर्ति देखी तब ऐसा अनुभव हुआ कि ब्रह्माण्डमें श्री रामजी सर्वव्याप्त है। उनका ही पूजन किया गया है।"

"जो जो ज्याचा घेतला गुण। तो तो म्या गुरु केला जाण।
गुरुसि आलें अपारपण। जग सर्वत्र गुरु दिसे ॥

अर्थात् जो कुछ अच्छा गुण जिससे ग्रहण किया गया उस विशिष्ट गुण का वह गुरु हो गया। इस प्रकार गुरु ही गुरु हो गये। सब संसार गुरुमय हो गया।"

रामदास स्वय लिखते हैं

"जे जे काही उत्तम गुण। ते तें सद्गुरुचें लक्षण ॥
(दा ५।२।६५)

जो उत्तम गुण हैं वही सद्गुरुका लक्षण है।" इससे यह स्पष्ट है कि रामदासजी सद्गुणी व्यक्तियोंको ही गुरु मानते थे। जिन विद्वानों में अच्छे अच्छे गुण दिखलाई पडे उनको तत् तत् सम्बन्धी गुरु मानकर उन्होंने स्वीकार किया। परात्पर गुरु तो स्वय श्री रामचन्द्रजी ही थे। मत्र के सम्बन्ध में उन के शिष्य दिनकर के 'स्वानुभव दिनकर' नामक ग्रन्थसे यह स्पष्ट होता है कि रामदासजी पुरश्चरण के लिए गायत्री मत्र के सिवा अन्य किसी भी मत्र का निषेध करते थे। लिखते हैं कि "मूल उपास्य को छोडकर लोग अन्य अनेक देवताओं को स्वीकार करते हैं। ऐसा न किया जाय। मूल उपास्य को स्वीकारकर उस के अनुसार ही प्रपच और परमार्थ में करता जाय।"
(स्वा दि ६-४-२३-२४)

सारांश पुरश्चरण के लिए मूल प्रणवयुक्त (ओंकार स्वरूप) गायत्री मत्र की महत्ता बतलायी गयी है। इस प्रकार रामदासजी का तप विघ्नयुक्त चल रहा था। उस में सफलता भी मिल रही थी। किन्तु सामान्य लोग अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करते थे।

सांसारिक कार्य करनेवाले लोग आपसमें बात करते थे कि इतना छोटा लडका, ऐसी भगवद्भक्ति और नित्य श्रमसे! हम क्या भगवद्भजन नहीं करते! किन्तु इसका भजन तो विपरीत ही है! कुछ लोग कहने लगे कि यह निःसशय पागल हो गया होगा, कुछ लोग कहते थे कि इसके माँ-बाप नहीं होंगे, बेचारा क्या करेगा! या तो इसको कुछ काम धन्धा नहीं मिलता होगा, इसलिए भिक्षा माँगकर अपने दिन गुजारता है! व्यवहार से परे है, राम

रटना लगातार है, कोई भी बात करनेपर 'श्रीराम' 'श्रीराम' कहता है। उसका दिमाग निश्चित रूप से बिगडा हुआ है। यह भी क्या तपस्या की कोई अवस्था है!

इस प्रकार लोगोंमें निन्दा होती थी। कुछ लोग मनोरंजन के लिए हँसी भी उड़ाते थे। इतना होनेपर भी रामदासजी शान्त भाव से सब सहन कर लेते थे। कहीं वितण्डावाद या अकारण झगड़ा नहीं करते। महान योगी के समान इनकी दिनचर्या चल रही थी। किसी एक स्त्रीने अपना प्रथम पुत्र रामदासजीको वैराग्य देखकर उनको समर्पित किया। रामदासजीने इस बालक का नाम 'उद्धव' रखा। पहला नाम 'शिवराम' था। बचपनमें इसका पालन-पोषण माता-पिताने ही किया। रामदासजी उसको खेलाते थे, लाड़ प्यार करते थे। संवत् १६८६ में उद्धव का यज्ञोपवीत संस्कार रामदासजी के द्वारा सम्पन्न हुआ। इनके सहवासमें वह सम्पूर्णतया चारित्र्यवान और विरागी हो गया।

रामदासजी के नसनस में संस्कृति और चारित्र्य भिद गया था। संस्कृति और चारित्र्य सचमुच राष्ट्ररथ के दो महान चक्र हैं। दोनोंही, तपस्यापर निर्भर हैं। जितना तप अधिक होगा उतना ही 'संस्कृति और चारित्र्य' अधिक दृढ होंगे। 'विना ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।' उसी तरह ये दोनो चक्र राष्ट्रोन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक है। संस्कृति और चारित्र्य में ही परमात्मा का अधिष्ठान है।

अब रामदासजी तप के द्वारा ज्ञान-वैराग्यादि सामर्थ्य सम्पादन करनेमें लगे हुए थे। 'आत्मशुद्धि' करना इनका प्रथम लक्ष्य था। इस लिए 'षड्रिपु' (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) को रोकने की आवश्यकता पड़ती थी। श्रीरामचन्द्रजी पर दृढ विश्वास होनेके कारण ही तपस्यामें उन्हें पूर्ण सफलता मिल रही थी। वे एक महान योगी बन गये थे। धीरे धीरे इस विरागी और विख्यात योगीकी ख्याति चारों तरफ फैल गयी। उस कालमें योगी, साधु, सन्त आदि पुरुषोंका बड़े बड़े राजा, सरदार आदि चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हो, दर्शन करने आते थे। उनसे वे आशीर्वाद प्राप्त करते थे। राजा लोग उन्हें उपहार भी देते थे।

कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि संवत् १६८८ की वर्षा ऋतु में शाहजी नाशिक में थे। रामदासजी की ख्याति सुनकर वे उत्सुकतासे उनका दर्शन करने गये थे। उन्होंने इस समय शिवाजी के जन्म की वार्ता भी रामदासजी से कह दी थी और अपने स्वराज्य-स्थापना के हेतु-सिद्धि के सम्बन्ध में उनसे बातचीत करके आशीर्वाद की याचना की थी।

इस प्रकार ठीक बारह वर्षों के बाद स. १६८९ में पुरश्चरण समाप्त कर रामदासजी तीर्थाटन के लिए प्रस्तुत हुए। उद्धव साथ में जाना चाहते थे किन्तु रामदासजीने उन्हें समझाया और पूजा के लिए एक गाय के गोबर की हनुमानजी की मूर्ति देकर उसी गुहामें तपश्चर्या करने की आज्ञा दी और 'बाद में हम तुम्हें बुलाएगे' ऐसा कहकर उद्धव को रोक दिया। स. १६८९ के फाल्गुन में रामदासजी तीर्थयात्रा के लिए निकले।

९
तीर्थयात्रा।

चार धाम सत मोक्ष पुरी आदि भारतवर्ष के सभी मुख्य तीर्थ रामदासजीने देखे। उस समय तीर्थयात्रा एक महान कार्य था। साधारणतया प्रौढ अवस्थाके लोग अपने जन्मको सफल करने के लिए यात्रा करने में प्रवृत्त होते थे। भारतीयों के जीवन का यह एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

यात्रा के लिए जब लोग निकलते थे, तब वे जत्थे में जाते थे। मार्ग में कितना भय था! कोई सुविधा नही थी। पॉवसे जाना पडता था; जगह जगहपर ठहरना पड़ता था; पकाना पडता था; भोजन आदिकी व्यवस्था वृक्षके नीचे या कहीं ओटमें करनी पड़ती थी। रात्रिमें श्वापदोंका भय, दिन मे डाकुओंका भय, और भी कई अड़चनें उपस्थित होती थीं। उस समय तीर्थयात्रा करके लौट आना एक महान पराक्रम या जीवित-कार्य था। जानेके पूर्व यात्री घर की व्यवस्था, परिवार का भार आदि दूसरोंको सौंपते थे। यदि बहुत दिनों के बाद यात्री घर नहीं लौटा

तो विना उस के साथी से कुछ सुनने तक उसका पता लगाना भी मुश्किल होता था। अपने पुत्र, बहू-बेटियों की हालत कैसी है, क्या है, इस प्रकार यात्रियों को हमेशा परिवार की चिन्ता रहती थी। तीर्थयात्रा के समय यात्रीका ध्यान आधा घर में और आधा तीर्थयात्रा की चिन्ता में, फिर भगवान के दर्शन का ध्यान कहाँ ! ऐसी बहुजन समाज की परिस्थिति थी। अपने परिवार के बजाय सामान्य यात्री को कुछ दूसरी चिन्ता नहीं थी।

किन्तु रामदासजी सामान्य यात्री के समान यात्रा करनेवाले नहीं थे। उन्हें परिवार की चिन्ता तनिक भी नहीं थी। क्यों कि 'देवाच्या सख्यत्वासाठीं' अर्थात् भगवान के सख्य के लिए उन्होंने स्वजन और घर छोड़ा था। श्रीरामचन्द्रजी की कृपा सबको प्राप्त हो, दृष्टि व्यापक हो और अपनी सिद्धावस्था को दृढता प्राप्त हो इसी उद्देश्य से वे यात्रा के लिए निकले थे।

इनके साथ यात्रा के समय कौन साथी थे इसकी अबतक कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। स्थान स्थान के आचार विचार और भाषा भिन्न थी। तपश्चर्या के फलस्वरूप वे सर्वत्र राम ही राम देखते थे। उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। वृत्ति श्रीरामचन्द्रजीमें लीन हो गयी थी। आत्मानुभव का यह फल था।

प्रथमतः रामदास, श्रीरामभक्त शिरोमणि भगवान श्री शंकर की नगरी काशी में गये। उपासनामें वृद्धि हो इसी उद्देश्यसे हनुमानजी के घाटपर कुछ दिनोंके बाद उन्होंने हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित की। अनन्तर वे हिमालय की ओर गये। बदरीनारायण और केदारेश्वर का दर्शन कर वसिष्ठाश्रम, व्यासाश्रम और हनुमन्ताश्रम के दर्शन किये। हनुमन्ताश्रममें वे ठण्डी के मारे सिकुड़ गये इतनी तीव्र ठण्ड़ी थी। यात्रामें किसी समय इनको तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ। सोचा कि देह नश्वर है, आत्मा अमर है, अहं भी ब्रह्ममें विलीन हो गया है, अब इस देहकी भी रक्षा करनेकी क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचार कर वे एक अथांह तालाब के किनारे पर कूद पड़नेकी तैय्यारीमें खड़े हो गये। इतनेमें किसीने आकर उन्हें कूद पड़नेसे रोका और कहा कि 'अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है; विवेक के साथ भोग और त्याग का आचरण करो।' रामदासजीने नतमस्तक हो उनकी आज्ञा मान ली। मान सरोवरसे हो कर हरिद्वार,

वृन्दावन, गोकुल, मथुरा आदि तीर्थोंकी यात्रा कर के फिर प्रयाग, काशी, गया, जगन्नाथजी गये। गोकुल—वृन्दावन में सूर, तुलसी, रामानद आदि आश्रमों का दर्शन किया। अयोध्या गये। नामसंकीर्तन के घोष के साथ आत्मसुख में मग्न होकर ये चल रहे थे। इन के साथ सन्तोंका एक जत्था था। भजन में प्रेम के कारण सब आनन्द में लीन हो जाते थे। प्रभु रामचन्द्रजी के दर्शन करने पर तो रामदासजी की स्थिति इस प्रकार हो गयी कि अन्तःकरण के सभी भाव रघुवीर में समाये गये थे। श्री रामचन्द्रजी का सुन्दर मन्दिर, अनेक प्रकार के रत्न सार कलश आदि अत्यन्त मनोहर दिखाई देने लगे। सरयू नदी का तीर देखकर वे आत्मानन्द के साथ लोट पोट हो गये। कितना प्रेम! कितना आनन्द! कितना अनन्य भाव! नेत्रोंसे आनन्दाश्रु चल रहे थे।

इस के बाद रामदासजी वहाँ से चित्रकूट हो कर द्वारका गये। द्वारकामें गोमती पर स्नानादि कर के भील लोगों के प्रदेश में गये। किसी एक ने वहाँ एक धनुष और एक दण्ड भेंट स्वरूप दे दिया। यह दण्ड सज्जनगड में अब तक है। तत् पश्चात् रामदासजी मुंगीपैठण गये। गंगास्नान करने गये तो वहाँके कुछ कुत्सित लोग इनका वेष देखकर पूछने लगे कि तुम्हारा कौनसा आश्रम है! रामदासजीने कहा कि 'मै ब्रह्मचर्याश्रम में हूँ।' दूसरेने पूछा कि यह धनुष किस लिए? रामदासजीने कहा कि यों ही रखलिया है। उसने फिरसे पूछा कि कुछ इस का अभ्यास भी है? उसपर रामदासजीने कुछ अलौकिक घटनाएँ दिखलाईं। सब लोगों को रामदासजी की सामर्थ्य का अनुभव हुआ। लोग उनकी शरणमें गये और बाद में उन्हें विदा किया।

इस के बाद वे अम्बा जोगाई गये। वहाँ दत्तात्रेय का दर्शन किया। यहाँ कविवर मुकुन्दराज की समाधि है। कवि तथा भक्त दासोपन्त यहीं के ही रहनेवाले थे। एक बार कीर्तन करते समय रामदासजी का तेजस्वी और सुन्दर मुख देखकर किसी एक को आशंका हुई कि यह निश्चित रूप से सूर्याजीपन्त का लड़का है। कीर्तन समाप्त होते ही उसने पूछताछ की और रामदासजीसे कहा कि तुम्हारी माता तुम्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं और तुम्हारी बाट जोह रही हैं। इसलिए वहाँ जाकर एक बार माताजी का दर्शन तो कीजिए। यह सुनकर रामदासजी जाम्बकी ओर चल दिये।

घरके आंगनमें खड़े रह कर उन्होंने एक श्लोक गाया। कोई वैरागी बाहर आया हुआ होगा, यह सोचकर गंगाधरपन्तकी पत्नी बाहर आयीं। उनको ऐसा मालूम हुआ कि यह वैरागी तो हमारा परिचित दिखाई देता है। उतने में माँ ने अन्दर से अपने पुत्र नारायण जैसी आवाज सुनी और बोलीं। 'कौन! नारायण!' 'जी, हाँ!' कह कर नारायण (रामदास) नतमस्तक हुए। माँ ने आलिंगन कर आशीर्वाद दिया। माँ अन्धीसी हो गयी थीं। उनको कोई आशा नहीं थी कि नारायण कभी मिलेगा। वे नारायण को अच्छी तरह देख नहीं सकीं। बीस वर्ष तक वे नारायण के लिए कुढ़ती रहीं। उन्होंने नारायण को स्पर्श करके देखा तो नारायण अब कितना बड़ा हो गया था, दाढ़ी मूँछ बड़ी बड़ी हुई थीं। मोटा भी हो गया था। माँ को सन्तोष नहीं हुआ क्यों कि वह उन्हें ठीक देख नहीं पाती थीं। इस लिए उन्हें बहुत दुःख हुआ। यह देखकर नारायण भी प्रेम से विह्वल हो गये और उन्होंने भगवान से अनन्य भाव से प्रार्थना की। भाग्यवशात् माताजी की आँखों में देखने योग्य शक्ति आ गयी। 'जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अन्धेको सब कुछ दरसाई।' भक्त सूरदासजी यह उक्ति सार्थक सिद्ध हुई। माताको बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रेमातिशय से कण्ठ भर आया और उन्होंने नारायणसे पूछा कि यह विद्या तूने कहाँ प्राप्त की! यह कोई इन्द्रजाल या भूतपिशाचादिकों की विद्या है? नारायण ने कहा कि यह भूत तो अनूठा है।

"होतें वैकुण्ठीचे कोनीं। शिरलें अयोध्या भुवनीं।
लागे कौसल्येचे स्तनीं। तेंचि भूत गे माय॥
सर्वा भूतांचें हृदय। नाम त्याचें रामराय।
रामदास नित्य गाय। तेंचि भूत गे माय॥

- माँ जी! यह भूत वैकुण्ठ के एक कोने में था, वह अयोध्या के एक भुवन में घुस गया। कौसल्याजी के स्तनपान करने लगा। वही यह भूत है। सभी भूतोंका (प्राणी मात्र का) यह हृदय है। उसका नाम 'रामराय' है। रामदास उस का गान हमेशा करता है। वही यह भूत है।" यह कृपा प्रभु रामचन्द्रजी की है। मैं उनका दासानुदास हूँ।

वृन्दावन, गोकुल, मथुरा आदि तीर्थोंकी यात्रा कर के फिर प्रयाग, काशी, गया, जगन्नाथजी गये। गोकुल—वृन्दावन में सूर, तुलसी, रामानंद आदि आश्रमों का दर्शन किया। अयोध्या गये। नामसंकीर्तन के घोष के साथ आत्मसुख में मग्न होकर ये चल रहे थे। इन के साथ सन्तोंका एक जत्था था। भजन मे प्रेम के कारण सब आनन्द में लीन हो जाते थे। प्रभु रामचन्द्रजी के दर्शन करने पर तो रामदासजी की स्थिति इस प्रकार हो गयी कि अन्तःकरण के सभी भाव रघुवीर में समाये गये थे। श्री रामचन्द्रजी का सुन्दर मन्दिर, अनेक प्रकार के रत्न सार कलस आदि अत्यन्त मनोहर दिखाई देने लगे। सरयू नदी का तीर देखकर वे आत्मानन्द के साथ लोट पोट हो गये। कितना प्रेम! कितना आनन्द! कितना अनन्य भाव! नेत्रोंसे आनन्दाश्रु चल रहे थे।

इस के बाद रामदासजी वहाँ से चित्रकूट हो कर द्वारका गये। द्वारकामें गोमती पर स्नानादि कर के भील लोगों के प्रदेश में गये। किसी एक ने वहाँ एक धनुष और एक दण्ड भेंट स्वरूप दे दिया। यह दण्ड सज्जनगड में अब तक है। तत् पश्चात् रामदासजी मुंगीपैठण गये। गंगास्नान करने गये तो वहाँके कुछ कुत्सित लोग इनका वेष देखकर पूछने लगे कि तुम्हारा कौनसा आश्रम है? रामदासजीने कहा कि 'मैं ब्रह्मचर्याश्रम में हूँ।' दूसरेने पूछा कि यह धनुष किस लिए? रामदासजीने कहा कि यों ही रखलिया है। उसने फिरसे पूछा कि कुछ इस का अभ्यास भी है? उसपर रामदासजीने कुछ अलौकिक घटनाएँ दिखलाई। सब लोगों को रामदासजी की सामर्थ्य का अनुभव हुआ। लोग उनकी शरणमें गये और बाद में उन्हें विदा किया।

इस के बाद वे अम्बा जोगाई गये। वहाँ दत्तात्रेय का दर्शन किया। यहाँ कविवर मुकुन्दराज की समाधि है। कवि तथा भक्त दासोपन्त यही के ही रहनेवाले थे। एक बार कीर्तन करते समय रामदासजी का तेजस्वी और सुन्दर मुख देखकर किसी एक को आशंका हुई कि यह निश्चित रूप से सूर्याजीपन्त का लड़का है। कीर्तन समाप्त होते ही उसने पूछताछ की और रामदासजीसे कहा कि तुम्हारी माता तुम्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं और तुम्हारी बाट जोह रही हैं। इसलिए वहाँ जाकर एक बार माताजी का दर्शन तो कीजिए। यह सुनकर रामदासजी जाम्बकी ओर चल दिये।

घरके आंगनमें खड़े रह कर उन्होंने एक श्लोक गाया। कोई वैरागी बाहर आया हुआ होगा, यह सोचकर गंगाधरपन्तकी पत्नी बाहर आयी। उनको ऐसा मालूम हुआ कि यह वैरागी तो हमारा परिचित दिखाई देता है। उतने में माँ ने अन्दर से अपने पुत्र नारायण जैसी आवाज सुनी और बोलीं। 'कौन! नारायण!' 'जी, हाँ!' कह कर नारायण (रामदास) नतमस्तक हुए। माँ ने आलिंगन कर आशीर्वाद दिया। माँ अन्धीसी हो गयी थीं। उनको कोई आशा नहीं थी कि नारायण कभी मिलेगा। वे नारायण को अच्छी तरह देख नहीं सकीं। बीस वर्ष तक वे नारायण के लिए कुढ़ती रहीं। उन्होंने नारायण को स्पर्श करके देखा तो नारायण अब कितना बड़ा हो गया था, दाढी मूँछ बड़ी बड़ी हुई थीं। मोटा भी हो गया था। माँ को सन्तोष नहीं हुआ क्यों कि वह उन्हें ठीक देख नहीं पाती थीं। इस लिए उन्हें बहुत दुःख हुआ। यह देखकर नारायण भी प्रेम से विह्वल हो गये और उन्होंने भगवान से अनन्य भाव से प्रार्थना की। भाग्यवशात् माताजी की आँखों में देखने योग्य शक्ति आ गयी। 'जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अन्धेको सब कुछ दरसाई।' भक्त सूरदासजी यह उक्ति सार्थक सिद्ध हुई। माताको बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रेमातिशय से कण्ठ भर आया और उन्होंने नारायणसे पूछा कि यह विद्या तूने कहाँ प्राप्त की! यह कोई इन्द्रजाल या भूतपिशाचादिकों की विद्या है? नारायण ने कहा कि यह भूत तो अनूठा है।

"होते वैकुण्ठीचे कोनीं। शिरलें अयोध्या भुवनीं।
लागे कौसल्येचे स्तनीं। तेचि भूत गे माय॥
सर्वा भूतांचें हृदय। नाम त्याचें रामराय।
रामदास नित्य गाय। तेचि भूत गे माय॥

" माँ जी! यह भूत वैकुण्ठ के एक कोने में था, वह अयोध्या के एक भुवन में घुस गया। कौसल्याजी के स्तनपान करने लगा। वही यह भूत है। सभी भूतोंका (प्राणी मात्र का) यह हृदय है। उसका नाम 'रामराय' है। रामदास उस का गान हमेशा करता है। वही यह भूत है।" यह कृपा प्रभु रामचन्द्रजी की है। मैं उनका दासानुदास हूँ।

ज़बर्दस्ती से प्रचार तथा प्रसार किया। लूट, अग्निकाण्ड, हत्याकाण्ड और धर्मान्तरण करना इन परधर्मियोंका वाना था। उनके ये अत्याचार मानव जाति के लिए कलंक स्वरूप थे।

"मुसलमानों का साथ फिरंगी लोग भी करते रहे। ये अत्यंत क्रूर और धोखे बाज थे। ऐसे समय लोगोंको धीरज देना पड़ता था। धर्मान्तरण तो कितना हो रहा था। ऐसा लगता था कि अगर धर्म नष्ट होनेवाला है तो हमें इस संसारमें जीवित रहने की आवश्यकता ही क्या? कुछ म्लेच्छ हो गये, कुछ पुर्तगालियों के धर्म में सम्मिलित हो गये। कितने ही देशभाषा के कारण रोके गये। धर्म का आचरण करने के लिए लोगोंको अवसर नहीं था।

"राजा भी ईश्वर का द्वेष करनेवाला और अन्यायी हो गया। फलस्वरूप उत्तम वर्ण अधम वर्णके गृहमें बलात्कार करने में प्रवृत्त हुआ। उस से वर्ण संकर हो गया। ब्राह्मण देश विदेश में भटकते हुए अपनी आजीविका करने लगे। गुरुगण ढोंगी और द्रव्य के इच्छुक हो गये। वर्णाश्रमधर्म अपनी सतह से बहुत कुछ गिर गया जिससे समाज में अनाचार फैल गया और अच्छे अच्छे कर्म करने में भी कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगीं। लोग सभी बलों में हीन हो गये। प्रत्येक वर्ण का तेज लुप्त हो गया।"

सामाजिक और राजकीय दुःस्थिति और धर्मग्लानिकी यह भयानक वार्ता सुनकर सब लोग दुःखी हो गये। श्रेष्ठ तो कहने लगे कि अब परमात्मा की कृपा के सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं दिखाई देता। रामदासजीने कहा "आपका कहना बिल्कुल सत्य है। बिना भगवान के सहारे कुछ नहीं हो सकता मेरा ख्याल है कि परिस्थिति सुधारने के लिए यत्न करनेपर कल्याण अवश्य होगा। वैदिक धर्म का उत्थान होगा। निराशा को स्थान नहीं देना चाहिए। अपनी दृष्टि को और भी व्यापक करना चाहिए यश देनेवाले भगवान प्रभु रामचन्द्रजी समर्थ हैं।" इस प्रकार बातचीत कर के सब ग्रामीणों से और अपने परिवार के लोगों से प्रेम से विदा माँगकर रामदासजीने पुनः यात्रा के लिए दक्षिण को ओर प्रस्थान किया।

दक्षिण में शंकर व्यंकटेश आदि देवताओंके स्थान, मध्वराय, विरूपाक्षादि स्थान, पंपा, ऋष्यमूक, कावेरीतटपर का रंगनाथजी का स्थान, कामाक्षी

हरिहरेश्वर आदि स्थानों की तीर्थ यात्रा समाप्त कर रामदासजी रामेश्वर गये। सेतुस्नान किया। हिन्दुस्थान गुफा, हाटकेश्वर आदिका दर्शन कर फिर चार वर्ष के बाद पंचवटी आ पहुँचे।

मेरु स्वामी के 'राम सोहळा' नामक ग्रंथ के अनुसार कहा जाता है कि महातपस्वी, अनुष्ठान करनेवाले योगेश्वर, कांटों में रहनेवाले विरक्त, गुहामें स्वानुभव के सुख में रहनेवाले और पर्णकुटी में रहनेवाले तापसी रामदासजी ने मार्ग में देखे। यात्रामें प्रारब्धवशात् एक वनसे दूसरे वन को जाना पडता था। कई कठिन स्थलों को पार करना पडता था। क्षुधा और तृषा का ध्यान नहीं, विश्राम नहीं, निद्रा नहीं, वायु वेगसे अपनी इच्छा के अनुसार वे चलते ही जाते थे।

यात्रा में मण्डली जमाकर रामदासजी उन्हें अपना ज्ञान देते थे। वे भी उनसे कुछ सीख लेते थे। कहीं मठ स्थापन करते थे। बहुत लोग उन के शिष्य हो गये। रामदासजी बालोंसे वृद्धोंतक प्रेमसे व्यवहार करते थे। लोगोंके साथ किस प्रकार बरताव करना, उनको कैसे पहचानना, किस युक्तिसे बुरे प्रसंगोंसे मुक्त हो जाना, दूसरोंको मुक्त करना, यह रामदासजी भली भाँति जानते थे। उन्होंने कहाँ कहाँ मठ स्थापित किये इसकी पूरी जानकारी नहीं है। साधारण तौर पर उत्तर भारत में-प्रयाग, अन्तर्वेदी (गंगा जमुना दो नदियोंके बीचका प्रदेश) गंगासागर, अयोध्या, मथुरा, काशी, बद्रीकेदार, द्वारका, रामटेक आदि और दक्षिण भारत में-गोमंतक, गोकर्ण, तिलंगण, रायचूर, सगर, श्रीरंगपट्टण, रामेश्वर मल्याळम्, सुरत, तापीपूर, देवगड, औंढ्या नागनाथ, भीमाशंकर, शिरोळा, सावंतवाडी, शिरगांव आदि स्थानोंमें अपनी यात्रामें मठ स्थापना की। मठोंके महंत अतिचतुर थे। रामदासजी उनको स्वयं शिक्षा देते थे। बादमें महंत दूसरोंको शिक्षित करते थे। इस प्रकार शिक्षित शिष्योंकी संख्या बढ़ती जाती थी। यात्रामें वे हर जगह भगवानसे प्रार्थना करते थे। परशुरामसे की गई प्रार्थना प्रसिद्ध ही है।

रामदासजी गाते बहुत अच्छा थे। उन के हिन्दी पद भी प्रसिद्ध हैं। वे एक प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। उन की आवाज सुरीली थी। अन्तःकरण में भगवत् प्रेम और जिव्हापर सरस्वती, शरीर भव्य, वेष वैराग्यशाली दास, वृत्ति

ज़बर्दस्ती से प्रचार तथा प्रसार किया। लूट, अग्निकाण्ड, हत्याकाण्ड और धर्मान्तरण करना इन परधर्मियोंका बाना था। उनके ये अत्याचार मानव जाति के लिए कलंक स्वरूप थे।

"मुसलमानों का साथ फिरंगी लोग भी करते रहे। वे अत्यंत क्रूर और धोखे बाज थे। ऐसे समय लोगोंको धीरज देना पड़ता था। धर्मान्तरण तो कितना हो रहा था। ऐसा लगता था कि अगर धर्म नष्ट होनेवाला है तो हमें इस संसारमें जीवित रहने की आवश्यकता ही क्या? कुछ म्लेच्छ हो गये, कुछ पुर्तगालियों के धर्म में सम्मिलित हो गये। कितने ही देशभाषा के कारण रोके गये। धर्म का आचरण करने के लिए लोगोंको अवसर नहीं था।

"राजा भी ईश्वर का द्वेष करनेवाला और अन्यायी हो गया। फलस्वरूप उत्तम वर्ण अधम वर्णके गृहमें बलात्कार करने में प्रवृत्त हुआ। उस से वर्ण संकर हो गया। ब्राह्मण देश विदेश में भटकते हुए अपनी आजीविका करने लगे। गुरुगण ढोंगी और द्रव्य के इच्छुक हो गये। वर्णाश्रमधर्म अपनी सतह से बहुत कुछ गिर गया जिससे समाज में अनाचार फैल गया और अच्छे अच्छे कर्म करने में भी कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगीं। लोग सभी वर्णों में हीन हो गये। प्रत्येक वर्ण का तेज लुप्त हो गया।"

सामाजिक और राजकीय दुःस्थिति और धर्मग्लानिकी यह भयानक वार्ता सुनकर सब लोग दुःखी हो गये। श्रेष्ठ तो कहने लगे कि अब परमात्मा की कृपा के सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं दिखाई देता। रामदासजीने कहा " आपका कहना बिल्कुल सत्य है। बिना भगवान के सहारे कुछ नहीं हो सकता मेरा ख्याल है कि परिस्थिति सुधारने के लिए यत्न करनेपर कल्याण अवश्य होगा। वैदिक धर्म का उत्थान होगा। निराशा को स्थान नहीं देना चाहिए। अपनी दृष्टि को और भी व्यापक करना चाहिए यश देनेवाले भगवान प्रभु रामचन्द्रजी समर्थ हैं।" इस प्रकार बातचीत कर के सब ग्रामीणों से और अपने परिवार के लोगों से प्रेम से विदा माँगकर रामदासजीने पुनः यात्रा के लिए दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

दक्षिण में शंकर व्यंकटेश आदि देवताओंके स्थान, मध्वराय, विरूपाक्षादि स्थान, पंपा, ऋष्यमूक, कावेरीतटपर का रंगनाथजी का स्थान, कामाक्षी

हरिहरेश्वर आदि स्थानों की तीर्थ यात्रा समाप्त कर रामदासजी रामेश्वर गये। सेतुस्नान किया। बिन्दुस्थान गुफा, हाटकेश्वर आदिका दर्शन कर फिर चार वर्ष के बाद पंचवटी आ पहुँचे।

मेरु स्वामी के 'राम सोहळा' नामक ग्रंथ के अनुसार कहा जाता है कि महातपस्वी, अनुष्ठान करनेवाले योगेश्वर, कांटों में रहनेवाले विरक्त, गुहामें स्वानुभव के सुख में रहनेवाले और पर्णकुटी में रहनेवाले तापसी रामदासजी ने मार्ग में देखे। यात्रामें प्रारब्धवशात् एक वनसे दूसरे वन को जाना पडता था। कई कठिन स्थलों को पार करना पडता था। क्षुधा और तृषा का ध्यान नहीं, विश्राम नहीं, निद्रा नहीं, वायु वेगसे अपनी इच्छा के अनुसार वे चलते ही जाते थे।

यात्रा में मण्डली जमाकर रामदासजी उन्हें अपना ज्ञान देते थे। वे भी उनसे कुछ सीख लेते थे। कहीं मठ स्थापन करते थे। बहुत लोग उन के शिष्य हो गये। रामदासजी बालोंसे वृद्धोंतक प्रेमसे व्यवहार करते थे। लोगोंके साथ किस प्रकार बरताव करना, उनको कैसे पहचानना, किस युक्तिसे बुरे प्रसंगोंसे मुक्त हो जाना, दूसरोंको मुक्त करना, यह रामदासजी भली भाँति जानते थे। उन्होंने कहाँ कहाँ मठ स्थापित किये इसकी पूरी जानकारी नहीं है। साधारण तौर पर उत्तर भारत में-प्रयाग, अन्तर्वेदी (गंगा जमुना दो नदियोंके बीचका प्रदेश) गंगासागर, अयोध्या, मथुरा, काशी, बद्रीकेदार, द्वारका, रामटेक आदि और दक्षिण भारत में-गोमंतक, गोकर्ण, तिलंगण, रायचूर, सगर, श्रीरंगपट्टण, रामेश्वर मल्याळम्, सुरत, तापीपूर, देवगड, औंढ्या नागनाथ, भीमाशंकर, शिरोळा, सावंतवाडी, शिरगांव आदि स्थानोंमें अपनी यात्रामें मठ स्थापना की। मठोंके महंत अतिचतुर थे। रामदासजी उनको स्वयं शिक्षा देते थे। बादमें महंत दूसरोंको शिक्षित करते थे। इस प्रकार शिक्षित शिष्योंकी संख्या बढ़ती जाती थी। यात्रामें वे हर जगह भगवानसे प्रार्थना करते थे। परशुरामसे की गई प्रार्थना प्रसिद्ध ही है।

रामदासजी गाते बहुत अच्छा थे। उन के हिन्दी पद भी प्रसिद्ध हैं। वे एक प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। उन की आवाज सुरीली थी। अन्तःकरण में भगवत् प्रेम और जिव्हापर सरस्वती, शरीर भव्य, वेष वैराग्यश्री दीस, वृत्ति

निस्पृह, इन गुणों से युक्त रामदासजी अपनी यात्रा सफल कर सके। उन्होंने लोगोंको भी कृतार्थ किया।

रामदासजीको अपने समाजकी आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक सामर्थ्य बढ़ाने की तिलमिलाहट उत्पन्न हुई। भगवान के अधिष्ठान के बलपर ही सब निर्भर था। रामदासजी ने सोचा कि बिना न्यायी और स्वधर्मनिष्ठ राजा के प्रगति या सुधार की कोई सम्भावना नहीं। बिना इस के जनता अपने बलपर खड़ी नहीं हो सकती। राजनैतिक परिस्थिति इस प्रकार थी कि दक्षिण में मराठा सरदारों में शाहजी बल तथा बुद्धि में श्रेष्ठ थे। राज्य में उनका दबदबा था। यद्यपि वे शाही सरदार थे तथापि अपने देश की रक्षा के लिए वे गुप्त रूपसे अपना राज्य स्थापन करना चाहते थे। तदनुसार उनका कार्य चल रहा था। इस का प्रारम्भ संवत् १६९३ में ही हो गया था।

यहाँ रामदास धर्म कार्य के लिए उचित स्थान ढूँढ़ते थे। श्रीशैल्य गिरिसे करवीर (कोल्हापूर), चिपळूण, महाबळेश्वर, पंढरपूर, भीमाशंकर आदि क्षेत्रों में यात्रा करते समय उनको यह पता लगा कि शाहजी के द्वारा अधिकृत प्रदेश कहीं कृष्णा नदी के पास में ही है। यह प्रदेश कार्य करने के लिए उचित होगा ऐसा उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया।

तपश्चर्या और तीर्थयात्रा करके उनको अब पूर्ण समाधान हो गया था। उन्हें अपने लिए कुछ करनाही नहीं था। दृढ़ विश्वास के साथ वे कहते थे कि—

"समाधान जालें प्रत्ययासि आलें। धन्य ते पाउलें राघवाचीं।
राघवाची पदें मानसीं धरीन। विश्व उद्धरीन हेळामात्रें॥
हेळामात्रें मुक्त करीन या जनां। तरीच पावन राघवाचा।
राघवाचा दास मी जालों पावन। पतित कोण उरों शके॥

मनःप्रसाद का अनुभव हुआ और ऐसा जान पड़ा कि श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलोंमें सार्थकता है। आत्मविश्वास के साथ रामदासजी कहते थे कि श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों को अपने मन में धारण कर; अखिल संसारका उद्धार करूँगा। इन लोगोंको दुःखसे बिना प्रयास के मुक्त करूँ तो

मैं श्रीरामचन्द्रजी का सेवक कहने योग्य हो जाऊँ। रामचन्द्रजी का यह दास पवित्र हुआ है। अब कौन पतित रह सकता है?" कितना आत्मविश्वास है! यह आत्मविश्वास श्री रघुनाथजी की कृपा के बल पर ही उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार तीर्थाटन का यह फल हुआ कि देशकी स्थिति कैसी है, लोगों में बल कितना है, धार्मिक मतभेद कितने हैं, ऐक्य है या नहीं, दुष्ट लोग कितने प्रबल हैं, उन्नतिका कोई उपाय है या नहीं, गोब्राह्मणों का परिपालन हो सकेगा या नहीं; देव-पूजा-तीर्थ-यज्ञादि कर्मों की क्या हालत है; आदि बातों के सम्बन्ध में रामदासजी को यथार्थ ज्ञान हुआ जिससे उनको स्वधर्म-स्थापना करने की स्फूर्ति मिली। तीर्थयात्रा समाप्त होते ही मसूर प्रान्त में आपने संवत् १७०१ में प्रवेश किया।

१०

धर्म संस्थापना। (आरम्भ काल)

रोगका निदान होनेपर ही ठीक इलाज हो सकता है। वैद्यको यशप्राप्ति होती है। रोगी अपने रोगसे मुक्त हो जाता है। रामदासजी महाराष्ट्र के लिए एक अच्छे वैद्य निकले। वे ठीक ठीक जानते थे कि धर्म और नीति के समन्वय से ही समाज का उद्धार होता है।

उस समय की राजनैतिक परिस्थिति इस प्रकार थी। रोहिड़ा किला हस्तगत कर उसके दक्षिण–सह्याद्रिके पहाड़ और पूर्व की ओर का प्रदेश शाहजीने वहाँ के जागीरदारोंको अनुकूल करके शिवाजीके अधिकारमें युक्तिपूर्वक दिलवाया। चाफल, मसूर, कन्हाड और उम्ब्रज शाहजीने अपनी जागीर में शामिल किया। इस प्रकार उस प्रदेशमें रामदासजी को धर्मस्थापना करने के लिए इस अनुकूल राजनैतिक परिस्थिति की सहायता अप्रत्यक्षतया मिली होगी। ये सभी घटनाएँ संवत् १६९९–१७०० में घटीं और रामदासजी तीर्थयात्रा समाप्त करके संवत् १७०१ में मसूर जागीर में आये। इस के पूर्व वे पंचवटी गये थे। वहाँ रामनौमीका समारोह मनाया। अबतक उद्धव चातक के समान अपने गुरुजी

रामदास स्वामीकी प्रतीक्षा करते थे। किन्तु उन्हें फिर लौटने का आश्वासन दकर रामनौमी के उत्सव के बाद रामदासजीने मसूर के लिए प्रस्थान किया।

रामदासजी पंचवटी से महाबलेश्वर गये, वहाँ कुछ दिन ठहरे, दिवाकर भट और अनंत भट पर अनुग्रह किया और महाबलेश्वर और वाईमें श्रीहनुमानजीकी स्थापना की। बाद में वे जरंडा गये। जयरामस्वामी, रंगनाथस्वामी, आनन्दमूर्ति, केशवस्वामी, वामनस्वामी आदि सन्तों से भेंट हुई। रामदासजी जरंडा से माहुली में संगमस्थानपर स्नान के लिए आया करते थे। वहाँ स्नान-संध्यादि करके ग्राम में भिक्षा के लिए जाते थे। नदी के किनारेपर बालू में कभी कभी लड़कों के साथ वे क्रीडा करने में दिलचस्पी लेते थे। यहाँ तुकाराम महाराज से भी उनकी भेंट हुई। रामदासजी और तुकाराम महाराजने अपनी अपनी गुरु-परम्परा बतलायी।

इसके पश्चात् रामदासजी करवीर (कोल्हापूर) की ओर निकले। शहापुर के पटवारी बाजीपन्त, उन की पत्नी सतीबाई, श्वशुर आबाजी मुरार, कराड के रुद्राजीपन्त देशपांडे, उन की पुत्री आक्का, मिरज के गोपजी देशपांडे और उनकी कन्या वेणूबाई, करवीर के सूबेदार पाराजीपन्त, उनकी बहन रखमाबाई और उसके दो पुत्र अम्बाजी (आगे चलकर 'कल्याण') और दत्तात्रय, चाफल के आनन्दराव देशपाडे, भानजी गुसाईं और तहसीलदार नरसो मल्लनाथ अम्बरखाने, मसूर के आपफले, पोरे और बुधकर श्रीसमर्थ रामदास स्वामी के सम्प्रदायमें प्रविष्ट हुए। अम्बाजी को साथ में लेकर दत्तात्रय और उन की माता को शिरगांव में मठ स्थापित करके रखा गया। चाफल में भी मठ की स्थापना की।

मसूरसे टाकली को चिट्ठी भेजी गई और उद्धव को यहाँ बुलाया गया। पंचवटी के रामोपासकों को एक पत्र दिया गया। मूल पत्र कविता में है। उसका सारांश इस प्रकार है—'जनस्थान गोदातट के रामोपासकों का यह सेवक है। आप श्रीरामचन्द्रजी के पास ही हैं और मैं दूर हूँ। कृपया प्रभुजी को मेरे शतशः प्रणाम कहिएगा। उनसे यह भी कहिएगा कि वह (रामदास) दासानुदास निराधार है; उसपर कृपा की जाय। आप लोगों में मैं अत्यन्त निकृष्ट हूँ। मेरे अवगुण कोटि कोटि हैं, परन्तु मैं रघुनाथजीका अनन्य सेवक हूँ।

इसलिए प्रत्येक दिन श्री रामचन्द्रजीसे मेरा प्रणाम कहिएगा। इतना तो मेरे लिए आप लोग कष्ट उठा सकते हैं। यह अब कृष्णानदी के प्रदेश में निवास करनेवाला तुच्छ जन बाल, वृद्ध, पुरुष, स्त्री, कुमार, कुमारी, सभी भक्त, इन सबको प्रणाम करता है। यह भी प्रार्थना है कि शुद्धमार्गका आचरण सदैव हो।

'शुद्ध उपासना विमल ज्ञान। वीत राग आणि ब्राह्मण्य रक्षण।
गुरुपरम्परेचें लक्षण। शुद्ध मार्ग॥

अर्थात् शुद्ध उपासना, विमल ज्ञान, वीतरागत्व, ब्राह्मण्य की रक्षा ये सब गुरुपरम्पराद्वारा प्राप्त शुद्ध मार्ग के लक्षण हैं'। स्वामीजीने शुद्ध मार्ग का इस प्रकार दिग्दर्शन करके लोगों में धर्म के प्रति दृढश्रद्धा उत्पन्न की। इस पत्र में स्वामीजी का स्नेहभाव और उनकी श्री रामचन्द्रजी के प्रति अनन्य भक्ति दिखाई देती है; उनकी सगुण उपासना, विनय, मधुर वाणी और दूसरे उपासकों पर प्रेम, विश्वास आदि प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं।

यात्रा में जहाँ जहाँ स्वामीजी गये वहाँ लोकसंग्रह करके उन्होंने श्री रामचन्द्रजी और हनुमानजी की उपासना में लोगों को प्रवृत्त किया था। स्वामीजी के द्वारा स्थापन की गई श्री हनुमानजी की मूर्तियाँ 'पाँव के नीचे दबाया हुआ राक्षस' इस प्रकार थीं। कुछ विद्वानों का ऐसा निष्कर्ष है कि राक्षस जैसे दुष्ट लोगों का नाश और धर्म का उद्धार करने के लिए यह प्रतीक लोगों के समक्ष रखा गया था। स्वामीजीने दस वर्ष के भीतर, ग्यारह स्थानोंमें श्री हनुमानजी की स्थापना की। कुछ विद्वानों का कथन है कि यह स्थापना राजनैतिक दृष्ट्या की गई थी, क्यों कि उस समय इन स्थानों का बहुत अधिक महत्त्व था।

ग्राम।		स्थापनाका समय।
शहापूर	(सतारा)	संवत् १७०१
मसूर	,,	,, १७०२
चाफल	,,	,, १७०५ श्रीके सम्मुख।
,,	,,	,, १७०५ श्रीके पीछेकी ओर

उम्ब्रज (सतारा)	संवत्	१७०६
माजगांव ,,	,,	१७०६
चाहे (वहें) ,,	,,	१७०८
मनपाडलें ,,	,,	१७०८
पारगांव ,,	,,	१७०९
शिरालें ,,	,,	१७११
शिंगणवाडी ,,	,,	१७११

इस प्रकार धर्म स्थापनाका कार्य अत्यन्त उत्साहके साथ और अव्याहत गतिसे चल रहा था। शिष्योंका इतना समुदाय होनेपर भी स्वामीजी इससे पूर्णतया अलिप्त थे। उन्होंने कहीं किसीके यहाँ भोजन नहीं किया या किसीसे प्रतिग्रह नहीं लिया, बल्कि पहले की तरह ही भिक्षा माँगकर भोजन करते थे। टाकलीका स्नान, संध्या, जप-नमस्कारादि कार्यक्रम लगातार चालू रहा। इस क्रमका अवलम्बन करने से ही वे अपना जीवन निःस्पृहता और निरपेक्षतासे व्यतीत कर सके। उनका निजी स्वार्थ किंचिदपि नहीं था। ऐसे सन्तोंके अवतीर्ण होनेपर ही संसारका कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं। ये समाजमें चेतना उत्पन्न करते हैं। निद्रिस्त संसार जाग्रत होता है। अज्ञान नष्ट होकर स्वत्त्वका ज्ञान प्राप्त होता है।

स्वामीजी का निवास देखिये ! वह कभी घरमें, महलमें नहीं, परन्तु किसी दूरके अरण्यमें वा एकान्त स्थानमें था। ग्राममें केवल भिक्षा के लिए और लोकसंग्रह करने के हेतु जाते थे। लोगों को उनका निजी कर्तव्य समझाकर स्वधर्म की रक्षा करने के लिए प्रवृत्त करते थे। तपस्या और तीर्थ-यात्रा के अनुभव सुनाते थे। रामायण की कथाएँ सुनाते थे। उन्हें उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति का ज्ञान करा देते थे। उनकी अन्धश्रद्धा धीरे धीरे नष्ट हो रही थी। स्वामीजी के प्रति लोगोंका भक्तिभाव बढता जा रहा था।

मसूरसे चार मीलकी दूरी पर चन्द्रगिरि नामक पहाड़ की गुहा में आपका निवास था। गुहा का वर्णन करते हुए स्वामीजी लिखते हैं :—

"जागा सुंदर गहन। तेथें सुखावलें मन। वरी पाहतां गगन। साठवलें॥

जगह रमणीय और एकान्त में है। वहाँ मन आनन्दित होता है। ऊपर देखने से गम्भीर आकाश ही आकाश दिखाई देता है। यह जगह निर्वात है और शीतकाल में बहुत अच्छी है। कृष्णा और कोयना नदियाँ दोनों तरफ बहती हैं और बीचमें पहाड है। चारों ओर देखने से चित्तको शान्ति मिलती है। नीचे की ओर देखने से खेत, किसान, हल आदि दिखाई देते हैं, पथिक आते जाते हैं, ग्वाल गौएँ चराते हैं, कभी कभी वे खेलते हैं। पहाड कुहरे के मारे ढँक जाते हैं। संक्षेप मे मानो यह दूसरा कैलास ही है।"

स्वामीजी ने सोचा कि इस बार रामनौमी का उत्सव मगुरमें ही हो। इसमें एक चाल थी। यह प्रदेश शाहजी के अधिकार में था, इसलिए इसका महत्त्व था। स्वामीजी शाहजी को यद्यपि जानते थे तथापि उन्हा ने समारोह मनाने के लिए शाहजी के पास द्रव्य की याचना नहीं की। भिक्षा के बल पर ही समारोह सांगोपांग मनाया गया। इस समारोह के शुभ अवसर पर वहाँ के पटवारी की माता को स्वामीजी ने अनुग्रह देकर कृतार्थ किया और वहाँ हनुमानजीकी स्थापना की। समारोह की अन्तिम तिथिको स्वामीजीने रथोत्सव मनाने का विचार किया। विचार सब को पसन्द आया। किन्तु रथ जिस रास्ते से जानेवाला था उसी रास्तेपर एक बडे वृक्ष की शाखा रथ को रुकावट डालती थी। उसे काटने के लिए कराड के अधिकारियों से रुद्राजीपन्त के द्वारा इजाजत मिली। परन्तु यह शाखा अडचन की जगह में होनेपर काटने के लिए किसी की हिम्मत नहीं होती थी। स्वामीजीने सोचा कि इसे काटने के लिए अम्बाजी ही एक सुयोग्य व्यक्ति है।

स्वामीजी के आज्ञा देनेपर अम्बाजी उसे काटने लगे कि आँधी आयी और शाखा टूट गयी। साथ ही साथ अम्बाजी भी नीचे के कुवे में गिर गये। लोगों में घबराहट पैदा हुई, किन्तु स्वामीजी निश्चिन्त थे। स्वामीजीने अम्बाजी से पुकारकर पूछा "कल्याण है!" अम्बाजीने उत्तर दिया कि "श्री की कृपा से कल्याण है।" और ऊपर आकर साष्टांग नमस्कार किया। तब से अम्बाजी का नाम 'कल्याण' पडा। उत्सव निर्विघ्नता से सम्पन्न हुआ। इस के बाद स्वामीजी चाफल गये। वहाँ कुछ दिनों के पश्चात् आपने श्री रामचन्द्रजी का मन्दिर बनाने का आयोजन किया। श्री नरसा महानाथ श्री आनंदराव देशपांडे

आदि शिष्यो के द्वारा और भिक्षाके रूपमें द्रव्य मिला। कहा जाता है कि श्री गिरि गुसाईंका कीर्तन शिवाजी के पुरोहित के यहाँ पूने में हुआ था। उस कीर्तन में शिवाजी उपस्थित थे। उन्होंने मन्दिर के लिए तीन सौ होन प्रदान किये। शिवाजी के प्रार्थना करने पर कि 'मन्दिर के काममें कुछ और सेवा मुझसे ली जाय' उत्तर मिला कि।

" समर्थ म्हणती शिष्य संप्रदाय माझा।
देवालय करवीन अनंत हस्तें॥

'अर्थात् समर्थने कहा कि मेरा शिष्य सम्प्रदाय उपस्थित है। यह मन्दिर अनेकों की मददसे बनवाऊँगा।"

स्वामीजी चाहते थे कि शिवाजीकी सेवा इस समय इस मन्दिर की अपेक्षा दूसरे कामों में बहुत उपयुक्त होगी। क्षत्रियों के द्वारा धर्मरक्षण का विस्तृत कार्य अभी बहुत पड़ा हुआ है। ऐसे कार्यों में वे लग जाएँ। स्वामीजीका विचार था कि वर्णाश्रम धर्मका पूरा पालन होनेसे जनता में बुद्धि, शक्ति आदि सामर्थ्यों की वृद्धि होगी। इसलिए इस समय उन्होंने शिवाजी की प्रार्थना को अस्वीकार किया। लोगोंके द्वारा मन्दिरका काम होनेसे उनमें एक अपनेपनका भाव उत्पन्न होगा। उस समय मन्दिर बनाने का काम महा कठिन था। किन्तु स्वामीजी की ख्याति के फलस्वरूप आदिलशाही में से भी मन्दिर बनाने के लिए सहायता मिली थी। वैसे ही बीजापूर के दीवान काशीपन्त धानतराव और सरदार बाजीराव घोरपडे ने भी बड़े बड़े इनाम दिये।

लोगों को अब स्वामीजी की कार्य करने की शक्ति, युक्ति और बुद्धि का पूर्ण परिचय हुआ। उनकी आज्ञा मानने के लिए वे अति तत्पर थे। मन्दिर बनाने के लिए गांव में जो जगह मिली वह एक श्मशान भूमि थी। लोग डरते थे कि कोई भूत पिशाचादिकों की बाधा हो जाय। किन्तु स्वामीजी ऐसी कल्पना को जगह न देनेवाले थे। उन्हों ने स्वयं वह जगह साफ करना प्रारम्भ किया और कई पत्थर नदी के जलमें फेंक दिये। सामान्य लोगों को भय न हो इस लिए उन्हों ने ऐसी व्यवस्था की कि दीपमाला के समीप जब श्री का रथ आ जाएगा तब इन भूतपिशाचादिकों के नामपर दही भात उतारा जाय। आजकल भी वैसा किया जाता है।

मन्दिर का काम स्वामीजी ने स्वयं किया और शिष्यों के द्वारा करवाया। उन्हें वेतन भक्ति-प्रेम का था और भोजन आदि का प्रबन्ध हमेशा की तरह भिक्षापर। इस प्रकार निरपेक्ष भावसे मन्दिर का काम पूरा हो गया। अब मूर्ति कहाँसे लायी जाय इसकी चर्चा शिष्योंमें शुरू हुई। स्वामीजीने सबका सुन लिया और एकान्त में विचार करने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि अंगापूर नामक ग्राम में कृष्णा नदी के दहमें मूर्ति प्राप्त हो सकेगी। तुरन्त वहाँ जाकर आपने मूर्ति प्राप्त की। सर्वत्र आनन्द हो गया। यह मूर्ति प्रासादिक दिखाई देती थी, इसलिए लोगों को इस पर गर्व था। मूर्ति अंगापूर के दह में मिली ऐसा ज्ञात होनेपर वहाँके कुछ कुत्सित लोग मूर्ति वापस लेने के लिए चाफल आये। स्वामीजीने कहा कि यदि रामराय को यहाँ रहने में कोई कष्ट हो तो आप इनको वापस ले जा सकते हैं, हमें कोई एतराज नहीं। अंगापूर के लोग मूर्ति ले जाने लगे तो लाख प्रयत्न करने पर भी वे ले न जा सके। अन्त में उन्होंने सोचा कि स्वामीजी महापुरुष दिखाई देते हैं। उन्हें यह श्री रामचन्द्रजीका प्रसाद मिला है, मूर्ति यहीं रहने दीजिए। अपने किये हुए कृत्यपर उन्हें पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने स्वामीजीसे क्षमा की याचना की।

विधि विधानके अनुसार भजन, पूजन आदि उपचार हो गये। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति संवत् १७०५ में स्थापित की गयी। स्वामीजीने इस समय भगवानसे यही याचना की कि राघवजी का धर्म चिरकालतक रहे। याचना का साराश इस प्रकार है।

"राघवजी का सनातन धर्म त्रिकालाबाधित रहे। उनकी कीर्ति भक्त मण्डली के द्वारा लगातार गायी जाय। जबतक शरीर में शक्ति है तब तक ही इहलोक और परलोक का साधन हो सकता है। सब शत्रुओं का (षड्रिपु) दमन किया जा सकता है। संसार का दुःख महान है। यह मैं किस से कहूँ! दूसरे के पास, ऐ भगवान! मैं क्या माँगूँ! जो समर्थ के पास माँगनेवाला है वह दूसरे के पास क्यों माँगेगा? बिना रामके कौन दाता है? किस के पीछे पड़ना! रामदास भगवान से कहते हैं कि अब मैं संसार से ऊब आया हूँ। मुझे इस से छुड़ाइए। तेरी देन अनमोल है, मनुष्य क्या देंगे!"

कहा जाता है कि इस समारोह में एक विशेष घटना हुई। चाफल के

प्राणजी देशमुखने मन्दिर की जगह के लिए स्वामीजी से कर माँगा। यह खबर शिष्योंके द्वारा शिवाजा को मिली। खबर मिलते ही इस असत्कृत्य के लिए शिवाजीने प्राणजी को प्राण-दण्डकी सजा सुनाई। परन्तु स्वामीजी को इस का पता लगतेही उन्होंने उसको बचा लिया।

अब स्वामीजीने सोचा कि किसी कार्य को स्थायी करने के लिए अच्छे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है जिससे समारोह का उत्तरदायित्व वे अपनेपनसे सम्हाल सकते हैं। इसलिए सर्व श्री नरसिंगराव अम्बरखाने (मुद्राधारी), प्राणजी देशमुख, नागोजीपन्त कुलकर्णी, नागोजीपन्त भावे, नाईक वाडी और नाणेघोल्कर इनके द्वारा श्री रामचन्द्रजी के आगे एक पुष्पपर हथेली रखकर शपथ कराई गयी। शपथ इस प्रकार है "हम लोग इस मन्दिर को सभी प्रकार से सहायता देंगे और इस अधिष्ठित देवता की भक्ति परम्परागत करेंगे।" तदनन्तर इन लोगोंने भी स्वामीजी से शपथ लेने के लिए प्रार्थना की। शपथ इस प्रकार ले ली गयी। "हम श्री रामचन्द्रजी के इस अधिष्ठान की ओर उदासीन नहीं रहेंगे।"

उसी दिन से श्री दिवाकर गुसाईं महाबलेश्वरकर पर मन्दिर की सारी व्यवस्था सौंप दी गई। स्वामीजी का कहना था कि प्रत्येक कार्य सुचारु रूप से हो। इतना ही नहीं वरन् वे स्वय कोई कार्य सुचारु रूपसे और सुव्यवस्थित करते थे। उन्हें अव्यवस्थित कार्य करने से अत्यन्त चिढ थी। उन्होंने हरएक व्यक्ति को काम नियुक्त कर दिया था। भीत साफ करना, चूना लगाना, चित्र खींचना, चँवर डुलाना, दिये जलाना, हाटबाजार करना, कोठीपर अधिकारी, चोपदार की नियुक्ति, आगे पीछे के कहार, चँवर कूँचे धरनेवाले, गन्ध, अक्षत, कीर्तन के लिए बैठक डालना, स्वयपाक करनेवाले, भोजन पक्ति परोसनेवाले, पानी परोसनेवाले, पक्ति की देखभाल करनेवाले की और ब्राह्मणों से प्रार्थना करना आदि छोटी मोटी बातों की व्यवस्था की गई थी। उनकी आज्ञा थी कि 'दूसरे के काम में रुकावट नहीं डालना, वरन् अपना अपना काम करना'।

स्वामीजी ने अपने शिष्यों और अनेको की सहायतासे श्रीराम मन्दिर की सुव्यवस्थित स्थापना की और रामोपासना के द्वारा धर्मस्थापना की जड

जमायी। उन्हें इस बात की ठीक जानकारी थी कि धर्मस्थापना ही समाज के उद्धार की एक मात्र संजीवनी गुटिका है।

११

शिवाजी पर अनुग्रह।

"जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥"

(सन्त तुलसीदास)

स्वामीजी उपर्युक्त नीरक्षीर (हंसक्षीर) न्यायसे सृष्टिकी ओर देखते थे। लोकसग्रह करने में इस दृष्टिका महत्त्व विशेष है। इन्होंने अबतक जो शिष्य बनाये थे और जिनके साथ अपना सम्बन्ध रखा था वे भले भले लोग थे। स्वामीजीने उन के स्वभाव, शील, भक्ति, निःस्पृहता आदि गुणोंकी ठीक ठीक जाँच की थी। स्वयं स्वामीजी का आचरण आदर्शभूत था। वे एक पुण्यात्मा व्यक्ति थे। लोग उन्हें देखकर पापकर्म करने से निवृत्त होते थे। स्वामीजी को दूसरे के मनकी बात ठीक ज्ञात हो जाती थी। वे कोई ढोंगी कपटी स्वार्थी और ऊपरी सन्त नहीं थे। बचपन से ही स्वार्थी वृत्ति के सम्बन्ध में उन्हें घृणा थी। जाँच पड़ताल किये विना वे किसी को अपने सम्प्रदाय में समाविष्ट नहीं करते थे। लोगों को उनके प्रति बड़ा आदर था और वह दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता था।

यहाँ शिवाजीका स्वातन्त्र्य प्राप्तिका प्रयास जोरके साथ अपने बलपर चल रहा था। संवत् १७०४ में उन्होंने कोण्डाणा और चाकण दो किले (जो आदिलशाही के अन्तर्गत थे) अपने अधिकार में कर लिये। इस समय शाहजी कर्नाटक में कुछ राजकाज में व्यस्त थे। आदिलशाह को शाहजी और शिवाजी के बारे में कुछ आशङ्का उत्पन्न हुई कि शाहजी हमें धोखा देगा। तुरन्तही उन्होंने शाहजी को विश्वासघात से पकड़कर कैद कर लिया। शिवाजी पर फत्तेखान और उनके भाई संभाजी पर फरीदखान, ये दो सरदार

भेजे गये। लेकिन शिवाजी और संभाजीने दोनों को परास्त किया। अब शाहजी को कैसे छुड़ा लिया जाय यही एक शिवाजी की चिन्ता थी। शिवाजीने पिताजी को मुक्त करने के लिए शाहजहाँ के द्वारा आदिलशाह को पत्र दिलवाया परन्तु सफलता नहीं मिली। ऐसे कठिन प्रसंग में दूसरा कोई सहारा नहीं था। शिवाजी स्वामीजीकी कीर्ति सुनकर बहुत ही प्रभावित हो गये थे। पहलेसे ही वे भावुक वृत्ति के थे। स्वामीजी का दर्शन करने के लिए वे अब उत्सुक हो गये। संवत् १७०५ में शिवाजी चाफल गये किन्तु भेंट नहीं हुई। इस समय मन्दिर की चहार दीवारी का दरवाजा बनवाने और नालों में बाँध बनवाने के लिए उन्हों ने सात सौ होन नरसो मल्लनाथ को दिये और वापस चले आये। तुकाराम महाराज से प्रार्थना करने पर भी उन्हो ने स्वामीजी को ही गुरु बनाने के लिए कहा। भवानी माताने भी शिवाजी को स्वप्न में दर्शन देकर ऐसा ही आदेश दिया था।

स्वामीजीने देखा और सुना कि शिवाजी का स्वराज्य-सम्पादन का कार्य अत्यन्त तीव्रता के साथ चल रहा है। अतः उनके धैर्य, शौर्य, सूझ और तेजस्विता आदि गुणों को देख कर स्वामीजी का मन ही मन खुश होना और ऐसा क्षत्रियोचित कर्म करनेवाला वीर मिलने पर उन्हें अतीव आनन्द होना, स्वाभाविक ही था। स्वामीजी के ज्ञान, निःस्पृहता, सामुदायिक कार्य करने की शैली और निपुणता, तीव्र वैराग्य आदि साधु गुणों को देखकर दिनों दिन स्वामीजी से अनुग्रह प्राप्त करने के लिए शिवाजी का उत्सुक होना भी उचित ही था। इस प्रकार दोनों ही महानुभावोंका अपनी ओरसे मिलन के लिए उत्सुक होना ठीक ही जँचता है। एक बार संवत् १७०६ के वैशाख में (शक १५७१ वैशाख शु. ४ शनिवार की रात्रि में) स्वामाजीने शिवाजी को स्वप्न में दर्शन दिया। शिवाजी तुरन्त ही दूसरे दिन चाफल जाने के लिए निकले तो बीच में माहुली में उन्हें (शक १५७१ वैशाख कृ. ८) स्वामीजीका पत्र मिला। पत्रका सारांश इस प्रकार बताया जाता है कि "तीर्थ तथा क्षेत्रका पावित्र्य नष्ट हो रहा है और ब्राह्मण स्थानभ्रष्ट हो रहे हैं। इस प्रकार धर्म-ग्लानि हो रही है। ऐसे समयमें अब तुम्हारे विना धर्म की रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं दिखाई देता।

मैने तुम्हारे देशमें निवास करके भी तुमसे भेंट नहीं की। सयोग नही था। तुम्हारा चित्त अब बहुतसे राजनैतिक दाव पेंचोंमें व्यस्त हो गया है। ऐसे कठिन प्रसगमें मैंने तुम्हें लिखा है, तुम मुझे इसके लिए क्षमा करना।"

इसका उत्तर शिवाजीने टहलुवे के साथ भेजा और तुरन्त ही वे स्वामीजीके दर्शनके लिए प्रस्तुत हुए। टहलुवा और आप साथ ही साथ पहुँचे। उस दिन वैशाख शुद्ध नौमी थी। शिगणवाडीके उद्यानमें स्वामीजी कल्याणको कुछ लिखाते थे। प्रत्यक्ष भेंट हुई इसलिए स्वामीजी और शिवाजी को बडा आनन्द हुआ। कुछ बातचीत हुई। बाद में शिवाजी के अनुग्रह के लिए प्रार्थना करनेपर स्वामीजीने उसी उद्यान में एक इमली के वृक्ष के नीचे शिवाजीपर अनुग्रह किया।

स्वामीजीने शिवाजी को उस समय जो परमार्थ परक उपदेश दिया उसका साराश यह है कि "पाँचों भूत नश्वर और मिथ्या हैं। आत्मा शाश्वत और सत्य है। यह तत्त्व विवेक और सत्सगति से आत्मसात् करना चाहिए। किसी कार्य का कर्ता, भोक्ता 'मैं नहीं हूँ' यह स्वानुभूति से और आत्मनिवेदन के द्वारा जानकर उस परम पुरुष में मिल जाना चाहिए। बाह्य व्यवहार तो स्वधर्म के अनुसार चलता रहे।"

इसी समय राजधर्म और क्षात्रधर्म भी कहे गये जिसका साराश इस प्रकार है।

राजधर्म—"ससार की सुस्थिति के लिए यह कथन है। सासारिक कार्य सावधानी से किया जाय। अखण्ड यत्न करने से सुख प्राप्ति होती है। सेवक को परखकर रखा जाय। निकम्मे को निकाल दिया जाय। जाँच पडतालकर कार्य करना चाहिए। दुराग्रही को कार्यक्षम बनाना चाहिए। किसी भी मनुष्य की योग्यता का उपयोग समय पडने पर ही होता है। न्याय की मर्यादा का उल्लघन न हो। यह भी देखा जाय कि सब वर्ग स्वधर्मनिरत हैं या नहीं। राजा को चाहिए कि वह कष्टों को सहन करे, प्रसग पडनेपर अपना धैर्य न खो दे और आलस्य को छोडकर सकट काल में उचित उपाय करके सकट से पार हो। मन लगाकर और सावधानी से वह अपने लक्ष्यपर प्रहार

करे जिससे राजनीति में सफलता प्राप्त हो। युद्ध में प्रत्यक्ष लड़ना मुखिया का काम नहीं किन्तु अनेकों को उत्साहित करना उसका काम है। घोड़े, शस्त्र, सवार आदि की देखभाल वह अच्छी तरह करे। व्याघ्र का थपेड़ा खाकर भेड़ें तुरन्त ही भाग जाती हैं। वैसे ही शत्रु भी भाग जाएगा। स्वामी और सेवक एक मन से काम करें।

क्षात्र धर्म :—क्षात्र धर्म अत्यन्त कठिन है। इस धर्म का पालन करना भीरु का काम नहीं। जिसको अपने प्राणों की भीति है उसको चाहिए कि वह इससे दूर रहे। रणक्षेत्रसे खाली हाथ लौटनेपर न तो इहलोक और न तो परलोक मिलता है बल्कि जो दुर्दशा होती है वह ऊपरसे।

" मारितां मारितां मरावें। तेणें गतीस पावावें।
फिरोन येतां भोगावें। महद्भाग्य।

दुष्टों का संहार करते हुए मरने से सद्गति प्राप्त होगी। जय प्राप्त करके लौट आने से ऐश्वर्य का उपभोग करने को मिलेगा।" उचित अवसर पर मारकाट करनी चाहिए। वीर पुरुष को चाहिए कि वह अपना उत्साह न छोड़े। समय देखकर कार्य को वह सावधानी से करे तभी उसको विजय मिलती है। जब युद्ध में दोनों दलके सैनिक घुस जाते हैं तब वह झनझनाहट के साथ घमासान युद्ध करे। देवताओं का उच्छेद या स्वधर्म नष्ट होने की अपेक्षा मृत्यु को आलिंगन करना अच्छा है।

" मराठा तितुका मेळवावा। महाराष्ट्र धर्म वाढवावा।
ये विषयीं न करितां तकवा। पूर्वज हांसती॥ "

मराठे जितना सगठित हो सकें उतना सगठित करना और महाराष्ट्र धर्म को वृद्धिंगत करना। यदि इस सम्बन्धमें सावधानी न रखी गई तो (हमारे) पूर्वज (हमारी) हँसी उड़ाएंगे। मृत्यु तो कभी नहीं चूकती। अतः विवेकसे काम लेना चाहिए। भगवानका द्वेष करनेवाले कुत्तोंके समान हैं। उन्हें मारकर भगा देना चाहिए। भगवान के सेवकही जय प्राप्त करते हैं। विवेक और विचार करके सावधानीसे सकटोंका सामना किया जाय। मुल्क की रक्षा हो। तुलजा देवी के वर के कारण ही रामने रावणको (युद्धमें) मारा। यही तुलजा भवानी रामको वरदान देकर प्रसिद्ध हो गई है।"

अधिकारी सद्गुरु अधिकारी शिष्यको अधिकारके अनुसार उपदेश देकर कृतार्थ करते हैं। यहाँ जो उपदेश दिया गया है, उसका अन्तिम लक्ष्य नरदेहको सार्थक करना है। जिस उपदेशसे नरदेह सार्थक नहीं होता ऐसा उपदेश बेकार है। सच्छिष्य सद्गुरुके पास जब नम्र होकर आता है तभी सद्गुरु उसे ज्ञान प्रदान करते हैं। यही उन्नति और कल्याणका एक मात्र चिन्ह है। इन गुरु शिष्यों की देह भिन्न थी परन्तु आत्मा एक थी। मन एक था। परस्पर में प्रेम और आदरपूर्ण व्यवहार था। स्वामीजीने शिवाजीको प्रेमपूर्ण आशीर्वाद दिये। कहा जाता है कि इस समय कई होनोंकी वृष्टि की गई। यहाँतक पथिकको उस भूमिमें कभी कभी एक दो होन मिलते थे।

प्रथम भेंट और अनुग्रहकी तिथिके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बहुतसे मतभेद दिखाई देते हैं। किसी ठोस प्रमाणके अभावमें मतभेदोंका होना स्वाभाविक ही है। हमारी दृष्टिसे उपलब्ध प्रमाणोंमें 'शिवाजीका स्वामीजीको लिखा हुआ पत्र' या सनद यही एक प्रमाण उनकी भेंट के सम्बन्धमें अनुमान करने के लिए विश्वसनीय माना जा सकता है। श्री श्री देव के कथनानुसार यह पत्र वास्तविक नहीं है, तो भी अन्य दो उपलब्ध प्रतियोंके साथ आपने उसको भाँप लिया है। इस पत्रकी प्रति सज्जनगडमें प्राप्त हुई है।

'सनद की नक्ल' (सज्जनगडमें प्राप्त)

अगहन शुक्ल १० शक १६०० (सवत् १७३५)

श्री।

श्री रघुपति।
श्री मारुति।

श्री सद्गुरुवर्य, श्री सकल तीर्थरूप श्री कैवल्यधाम श्री महाराज श्री स्वामी की सेवा में।

श्री।

श्री रघुपती
श्री मारुती

श्री सद्गुरुवर्य श्रीसकलतीर्थरूप श्री कैवल्यधाम श्रीमहाराज श्री स्वामी स्वामीचे सेवेसीं

चरणरज शिवाजी राजे यानी चरणावरी मस्तक ठेऊन विज्ञापना

चरणरज शिवाजी राजा चरणों में मस्तक नवॉकर नम्र निवेदन करते हैं।

मुझे कृपा करके सनाथ किया और आज्ञा दी कि तुम्हारा मुख्य धर्म राजकाज करना और धर्मस्थापना (करना है)। गो ब्राह्मणों की सेवा, प्रजा की पीड़ा को दूर करके उसका पालन-पोषण करना, यह व्रत सम्पादन करते हुए साथ साथ परमार्थ करना। तुम मन में जिसकी इच्छा करोगे वह श्री......पार करेंगे। इसके अनुसार कार्य किया गया। दुष्ट तुरुक लोगों का नाश, विपुल द्रव्य प्राप्त करना, जिससे राज्य स्थिर रहे ऐसे स्थल मज़बूत करना आदि जो कुछ मनोरथ थे वे स्वामीजी के आशीर्वाद के फल-स्वरूप सफल हो गये। जो राज्य प्राप्त किया गया है वह स्वामीजी के चरणों में अर्पित करके सतत सेवाका लाभ लें ऐसा विचार किया किन्तु आज्ञा हुई कि तुम्हें जो इस के पूर्व धर्म कहे गये हैं उस के अनुसार ही तुम्हारा व्यवहार हो और वही सेवा है। इसपर हमेशा आपका सान्निध्य होकर दर्शन का लाभ हो, श्री......की स्थापना हो; सम्प्रदाय, शिष्य और भक्ति दशदिशाओं में फैलजाय इस तरह प्रार्थना की तत् पश्चात् आपने श्री......

जे मजवर कृपा करुनु सनाथ केले आज्ञा केली कीं तुमचा मुख्य धर्म राज्य साधन करुनु धर्म स्थापना देव ब्राह्मणाची सेवा प्रजेची पीडा दूर करून पाळण रक्षण करावें हें व्रत सपादून त्यात परमार्थ करावा तुम्हीं जे मनीं धराल तें श्री सिद्धीस पाववील त्याजवरून जो जो उद्योग केला व दुष्ट तुरुक लोकाचा नाश करावा विपुल द्रव्य करुनु राज्य परपरा अक्षई चालेल ऐशीं स्थळे दुर्घट करावी ऐसें जें जें मनीं धरिलें ते ते स्वामीनीं आशिर्वादप्रतापें मनोरथ पूर्ण केले याउपरी राज्य सर्व सपादिलें तें चरणीं अर्पण करुनु सर्व काळ सेवा घडावी ऐसा विचार मनीं आणिला तेव्हा आज्ञा जाहाली कीं तुम्हास पूर्वीं धर्म सागितले तेच करावेस तीच सेवा होय ऐसे आज्ञापिले यावरून निकट वास घडुनु वारंवार दर्शन घडावें श्री ची स्थापना कोठेंतरी होऊनु सांप्रदाय शिष्य व भक्ति दिगंत विस्तिर्ण घडावी ऐसी प्रार्थना केली ते ही आश्रमंतात गिरिगव्हरीं वास करुनु चाफळीं श्री स्थापना करुनु साप्रदाय शिष्य दिगंत विस्तीर्णता घडली त्यास, चाफळीं श्री ची पूजा मोहोछाव ब्राह्मण भोजन अतिथि इमारत सर्व यथासाग घडावे जेथें जेथें श्री च्या मूर्ति स्थापना जाहाली

को चाफल में स्थापित करके पास के गिरिगव्हरों में निवास किया। यहाँ सम्प्रदाय बढ गया और शिष्य बहुत हो गये। सो चाफल में श्री की पूजा महोत्सव, ब्राह्मण भोजन, अतिथि, इमारत आदि की उचित व्यवस्था हो, इस लिए राज्य में से कुछ गाव और भूमि की नियुक्ति करने के लिए आज्ञा माँगी, इसपर आज्ञा हुई कि 'विशेष व्याप करने का क्या कारण है तथापि तुम्हारे मनमें श्री की सेवा हो ऐसा है और तुमने निश्चय किया है, इस लिए यथा वकाश जो कुछ नियुक्त करने की इच्छा हो उसको नियुक्त किया जाय और भविष्य में जिस मात्रा में सम्प्रदाय, राज्य और वश का विस्तार होगा उसी मात्रा में नियुक्ति की जाय।' इस प्रकार दूसरे देश में भी सम्प्रदाय और श्री की स्थापना हो गई जिसके लिए ग्राम भूमि नियुक्तिपत्र भी भेजे गये। श्री ..के समीप चाफल में १२१ सर्वमान्य गाव और १२१ गाव में, ग्यारह बीघे प्रतिगाव कुल १२१ बीघेजमीन और ग्यारह स्थानोंमें श्री की (हनुमानजीकी स्थापना) हो गई। वहाँ नैवेद्य, पूजा आदिके लिए ग्यारह ग्यारह बीघे नियुक्त किये गये हैं। इस तरह सकल्प किया और वह अन्तमें सफल करने की जो आज्ञा हुई उसके अनुसार सम्प्रति गाव और भूमि नियुक्त की उसका ब्योरा —

तेथें उछाव पूजा घडावी यास राज्य सपादिलें यातील ग्रामभूमि कोठें काय नेमावी ते आज्ञा व्हावी तेव्हा आज्ञा जाहाली की विशेष उपाधीचें कारण काय तथापि तुमचे मनीं श्री ची सेवा घडावी हा निश्चय जाहाला त्यास येथा अवकाश जेथें जे नेमावेसे वाटेल ते नेमावें व पुढें जसा सप्रदायाचा व राज्याचा व वशाचा विस्तार होईल तैसें करीत जावें या प्रकारें आज्ञा जाहाली यावरून देशातरीं साप्रदाय व श्री च्या स्थापना जाहाल्या त्यास ग्राम भूमींची पत्रें करून पाठविलीं श्री सनिध चाफळीं एकशें एकवीस गाव सर्वमान्य व एक्शें एकवीस गावीं अकरा निघेप्रमाणें भूमि व अकरा स्थळीं श्री ची स्थापना जाहाली तेथें नैवेद्य पूजेस भूमि अकरा निघेप्रमाणें नेमिले आहेती ऐसा सकल्प केला आहे तो सिद्धीस नेहण्याविषयीं विनति केली तेव्हा सकल्प केला तो परपरेनें सेवटास न्याहावा ऐसी आज्ञा जाहाली त्याज वरून साप्रत गाऊ व भूमी नेमिले . .. तपशील

१ मौजे चाफल, मौजे नाणेगांव आदि गांव तैंतीस।

२ मौजे दहिफल बुद्रुक, परगणा ढवली (श्री श्रेष्ठ की समाधिके लिए)

३ तैंतीस गावमें ज़मीन बीघे ४१९, एक चराई व १२१ खण्डी धान्य जिस का विस्तारपूर्वक ब्योरा किया गया है।

कुल गाव तैंतीस और ज़मीन ग्यारह बीघे प्रत्येक गांवमें कुल ४१९ बीघे और एक चराई और धान्य १२१ खण्डी श्री...के पूजा, उत्सव आदि के लिए नियुक्त किये गये हैं। उत्सवके दिनोंमें और इमारत के लिए नियुक्त किये गये धान्य आदि समय समयपर दिया जायगा। इस प्रकार परम्परासे उत्सव आदि की व्यवस्था करने की आज्ञा हो।

राज्याभिषेक ५ कालयुक्ताक्षी नाम संवत्सर अगहन शु. दशमी यह विज्ञप्ति।

---

(१) उपर्युक्त पत्रमें—'मुझे कृपा करके......धर्मस्थापना। इस वाक्य समूहमें कृपाका अर्थ अनुग्रह लगाया जा सकता है। मुख्य धर्मका सम्बन्ध, अनुग्रह के समय जो राजधर्म और क्षात्रधर्म कहे गये है उससे हो सक्ता है। 'गोब्राह्मणों की सेवा......सफल हो गये।' 'इसका अर्थ इस पत्र के समयतक अर्थात् संवत १७३५ तक गोब्राह्मणों का पालन होता रहा, दुष्टों का नाश किया गया,

---

१ मोजे चाफळ, मौजे नाणेगांव वगैरे गाव तेहतीस.

२ मौजे दहिफळ बुदुक, परगणा ढवळी (श्री श्रेष्ठांचे समाधी करिता)

३ तेहतीस गांवांत जमीन बिघे ४१९, एक कुरण व १२१ खंडी धान्य.

येकूण दरोबस्त सर्वमान्य गाऊ तेहतीस व जमीन बिघे गाऊगना चारशे एकोणीस व कुर्ण येक व गल्ला खंडी येकसे एकवीस श्री चे पूजा उछाहा बद्दल संकल्पातील साप्त नेमिले व उछाहाचे दिवसास व इमारतीस नक्ती ऐवज व धान्य समयाचे समयास प्रविष्ट करीन येणें करोन अक्षई उछाहादि चालविण्या विषीं आज्ञा असावी राज्याभिषेक ५ काल युक्ताक्षी नाम संवत्सरे आश्वीन शुद्ध दशमी बहुत काय लिहिणें हे विज्ञापना.

राज्य स्थिर हुआ और सब मनोरथ पूर्ण हो गये।' इस तरह लगाया जा सकता है, जिसकी पूर्ति के लिए उस समय की विकट परिस्थिति का विचार करते हुए कई वर्षों का समय लगना असम्भव नहीं। यदि माना जाय कि अनुग्रह का वर्ष संवत् १७०६ है तो संवत् १७३५ तक करीब तीस वर्षोंका काल दुष्टोंका नाश करके राज्य स्थिर करने के लिए पर्याप्त दिखाई देता है।

(२) 'जो राज्य......वही सेवा है।' यह घटना संवत् १७१२ के आरम्भ में हुई। उस समय शिवाजी को विरक्ति हुई थी किन्तु स्वामीजी की आज्ञा हुई कि पूर्ववत् अपने धर्म के अनुसार आचरण करो। उसी में ही कल्याण है।

(३) 'इसपर हमेशा......दर्शन का लाभ हो।' इससे यह प्रतीत होता है कि स्वामीजीका सहवास हो इसलिए शिवाजीने (परली) सज्जनगडपर संवत् १७०७ में स्वामीजीकी रहने आदिकी सारी व्यवस्था की, जो स्थान चाफल के नजदीक ही है।

(४) 'श्री की स्थापना हो...शिष्य बहुत हो गये।' चाफल में श्री को स्थापित किया गया। धीरे धीरे शिष्य सम्प्रदाय बहुत बढ़ गया। यह कार्य भी थोड़े समय का नहीं बल्कि लगातार संवत् १७०२ से संवत् १७३१ तक का दिखाई देता है। जिस समय अर्थात् संवत् १७३१ में शिवाजीने चाफल के रामनौमी के उत्सव की सारी व्यवस्था की थी और हर एक को उत्सव का काम नियुक्त कर दिया था। स्वामीजी का निवास तो हमेशा गिरि-गव्हरों में ही था।

(५) 'सो चाफल में......ग्रामभूमि-नियुक्ति पत्र भी भेजे गये।'

(श्री) संवत् १७३४ में जब शिवाजी कर्नाटक से लौटे तब उनकी इच्छा हुई कि कर्नाटक जैसे सुन्दर देवालय महाराष्ट्र में भी हों। स्वामीजी से आज्ञा माँगने पर उन्होंने उस समय कहा कि वर्तमान समय इसके उपयुक्त नहीं है आगे श्री की जो इच्छा।

(रा) स. १७३५ के वैशाख मास में शिवाजीने कुछ सेवा के लिए स्वामीजी से प्रार्थना की थी उस समय चाफल के देवालय का महाद्वार, दीपमालाएँ आदि बनवानेकी आज्ञा हुई।

(म) सवत् १७३५ के अगहन में जब शिवाजी स्वामीजी से चाफल मिलने गये तब ग्राम, भूमि आदि की नियुक्ति की आज्ञा हुई।

(६) 'श्री के समीप चाफल में...आज्ञा हो।' इसमें नियुक्ति किस प्रकार की गई इसका ब्योरा है।

यद्यपि इस पत्र से ऐतिहासिक दृष्टया कुछ निश्चित निर्णय नहीं किया जा सक्ता तथापि उपर्युक्त घटनाओंसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उपर्युक्त पत्र (सनद) की तिथि के पूर्व बहुत कालतक शिवाजी और स्वामीजी का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में था। अत अनुग्रह का वर्ष सम्भवत सवत् १७०६ हो सकता है।

१२

दस वर्षके भीतर

स्वामीजीने विदा होते समय शिवाजीको प्रसाद दिया। बालाजी आवजी चिटणीस और सोनदेव भी उस समय उपस्थित थे। शिवाजीके ये दो अतिनिकट के विश्वासपात्र सेवक थे। स्वामीजीने उन्हें भी सेवक धर्मका उपदेश दिया, उसका साराश इस प्रकार है। "जो सेवक अपना काम ठीक ठीक करता है, जिसने अपनी 'जिम्मेवारी सम्हाल ली है उसको धनी कभी नहीं कोसेगा। उन्होंने लोगोंको शिक्षित करके अक्लमद बनाया है। प्रथम तो बहुत ही अनाचार था। अब लोग उनका आदर्श देखकर आचारयुक्त होने लगे हैं। जो सेवक अपने स्वामीके इच्छानुसार काम नहीं करता और बेकार बकबक करता है, विविध प्रकारसे उल्टा काम करता है, स्वामीका किया हुआ कार्य बिगाडकर अपनी डींग मारता है ऐसे सेवक को अपने भाग्यसे भ्रष्ट होना पड़ता है। व्यर्थ दर्प करनेवाला कृतघ्न और स्वार्थी सेवक किस कामका! चोर, मलिन और कठोर भाषण करनेवाला सेवक सगठन नहीं कर सक्ता। सेवकको चाहिए कि वह अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करे। स्वामीके ऐश्वर्यकी ईर्षा न करे। स्वामी जो करे उसकी प्रतिष्ठा सेवक करे। प्रसगको सोच समझकर नम्रताके साथ सेवक भाषण

करे, खुशामद न करे, उनकी आज्ञाका पालन करे। ऐसा न करनेपर अवश्य अकल्याण होगा। प्रथम बड़ोंसे पूछना, उनकी अनुपस्थितिमें प्रसंग जानकर विवेकी सेवक अपनी बुद्धिसे कार्य करे। ऐसा सेवक इस संसारमें धन्य होता है। जिसके मनमें स्वार्थबुद्धिका अस्तित्व होता है, वहाँ शुद्धताके लिए गुंजाइश कहाँ! अपना स्वार्थ सिद्ध करना और धनीके कार्यकी हानि करना ये सेवक के लक्षण नहीं। घूसखोरी, स्वार्थ, षड्यन्त्र आदिसे सेवक दूर रहे। अपने धनीका मन सदैव सम्हालनेमें सेवकका हित है। 'मेरे बिना नहीं चलेगा' इस तरह गुप्त रूपसे या कभी कभी प्रकट रूपसे कहकर जो सेवक लोगोंको अपने वशमें कर लेता है, बिना किसी कारणके रूठता है, ऐसे सेवक को बडा पद कौन देगा? कार्य असफल हो या सफल किन्तु स्वामीको चाहिए कि वह ऐसे सेवकके अधीन न हो।"

देखिये! राजधर्म, क्षात्रधर्म, सेवकधर्म आदि उपदेश कितने उपकारक और महत्त्वपूर्ण हैं! किसी भी राष्ट्रके पुरुष उनका पालन यदि करेंगे तो उस राष्ट्रका कल्याण अवश्य ही होगा। स्वामीजीका हरएक उपदेश इस प्रकार उपकारक ही है। शिवाजीको सम्बोधित करके सम्पूर्ण समाज को स्वामीजीने ऐसा उपदेश देकर उपकृत किया है, इसमें सन्देह नहीं।

एक बार स्वामीजी चाफलकी 'मोर', गुहामें थे। वहाँ शिवाजी दर्शन करने आये। स्वामीजीने देखा कि शिवाजी बहुत ही तृषाक्रान्त हैं, तुरन्त पासमें ही स्वामीजीने अपनी कुबडीसे एक पत्थर उलट दिया तो अन्दर पानीका मधुर झरना निकला। शिवाजीको आश्चर्य और बडी प्रसन्नता हुई। जल पीकर स्वामीजी को अनन्य भावसे साष्टाग दण्डवत (नमस्कार) किया। देखिये गुरु-शिष्यका प्रेम! इस झरनेको 'कुबडीतीर्थ' कहा जाता है। (कुबडी=बैसाखी)

अनुग्रहके बाद उसी वर्षके ज्येष्ठ शु॥ १५ को शाहजी मुक्त हुए, किन्तु बादशाह प्रसन्न नहीं था। उसके मनमें कुछ सन्देह था। शिवाजीने भी इस समय मौन रखा था। आषाढ मासमें बहुत लोगोंके आग्रह करनेपर स्वामीजी का विचार हुआ कि पंढरपूर चलें। वहाँ श्री तुकाराम आदि सन्तोंका समागम हुआ और बडा आनन्द रहा। पंढरपूरसे स्वामीजी चाफल गये। संवत् १७०१ से १७०६ तक लगातार स्वामीजीको अधिक परिश्रम पडा जिस

के कारण थोड़ा विश्राम करनेके लिए और कुछ लेखन करनेके लिए वे शिवथरकी एकान्त गुहामें गये। चाफलके मन्दिरकी व्यवस्था दिवाकर गुसाईंपर सौंप दी। समस्त शिष्योंको दिवाकर गुसाईंकी आज्ञा मानने के लिए कह दिया और यह भी कहा कि उत्सव आदि कार्य भिक्षापर ही निर्भर रहे। स्वामीजी अपने साथ कल्याण, आक्का और अनन्त कविको ले गये।

शिवथर प्रान्त चन्द्रराव मोरे के अधिकारमें था। वह शिवाजीका शत्रु था। शिवथरकी गुहाको 'सुन्दर मठ' कहा जाता है। इसके चारों तरफ पहाड़ हैं। बीचमें तीन ग्राम हैं—कुम्भे शिवथर, आम्बे शिवथर और कसबे शिवथर। इस कसबे शिवथरके पीछले हिस्सेमें यह गुहा है। १२५ फुट लम्बी और ७५ फुट चौड़ी है। एक फर्लांग की दूरीपर चन्द्रराव का मकान था। उस ग्राममें प्रायः मोरे उपनामके ही सभी लोग थे। यहाँसे लगभग तीन मीलकी दूरीपर तोरणा, रायगड और राजगड शिवाजीके दुर्ग थे। इसी गुहामें शिवाजी कभी कभी दर्शन करने आते थे। शिवाजीको बारबार शत्रु प्रदेशमें आना ठीक नहीं था। उसमें खतरा था। स्वामीजीकी सलाह और आशीर्वादकी आवश्यकता प्रायः पड़ा करती थी। इसलिए शिवाजीने स्वामीजीसे परलीमें निवास करनेके लिए प्रार्थना की। किन्तु यहाँ आनेमें स्वामीजीका उद्देश्य रामोपासनाका प्रचार करनेका था। भिक्षाके बहाने शत्रु प्रदेशके लोगोंके साथ अधिक पहचान भी हो। स्वामीजीने यहाँ अपना ग्रन्थलेखन समाप्त किया। भविष्यमें जो कार्य करना था उसकी रुपरेखा बनाई। इसका उल्लेख उनके शिष्य और विश्वास पात्र लोग 'दहा संवत्सर' और 'सर्व ग्रन्थ' इन सांकेतिक शब्दोंके द्वारा करते थे।

शिवाजीके आग्रहसे स्वामीजी संवत् १७०७ में परली आगये। परलीसे कलम्बा, रामघल गुहा, महाबलेश्वर, शिवथर, जोर हिस्सा और रोहिडा हिस्सा, कर्यात् मावल आदि नजदीक थे। रास्ते भी खतरेसे रहित थे। यहाँ शिवाजीने स्वामीजीके लिए बागमें 'संध्यामठी' बनवाई। 'संध्यामठी' खास स्वामीजीके संध्यादि अनुष्ठानके लिए बनवाई थी। स्वामीजीने कुछ दिनोंके बाद नैऋत्य दिशामें श्री हनुमानजी की स्थापना की और दक्षिण दिशामें अंगलाई देवीकी।

यहाँ एक बार सन्तोंका मेला हुआ था। वामन, रंगनाथ, जयराम, केशव,

आनन्दमूर्ति आदि प्रमुख सन्त उपस्थित थे। भक्तियुक्त अन्त करणसे और प्रेमसे हरएक सन्तने हरिकीर्तन किया। इसी समयसे परली का नाम बदलकर "सज्जनगड' रखा गया। इस मेलेकी एक विशेषता थी और वह है 'शिवाजीका हरिकीर्तन'। बड़ा सुन्दर कार्यक्रम रहा। शिवाजी एक सच्चे भावुक थे। प्रथमतः आपने "प्रात काळ जाल्या राम आठवावा। हृदयीं धरावा क्षण एक॥" यह स्वामीजीकृत पद्य गाया और अन्तमें स्वरचित पद्य गाया। वह इस प्रकार है।

" जय हो महाराज गरीब नवाज ॥ धृ० ॥
बन्द कमीना कहना के तू। साहेब तेरी लाज ॥ हो महाराज० ॥१॥
मैं सेवक बहु सेवा मॉगू। इतना है सबकाज ॥ हो महाराज० ॥२॥
छत्रपति तुम दोकदार शिव। इतना हमारा अर्ज ॥ हो महाराज० ॥३॥
(पद १३१ स गा)

यह पद्य 'ललित'के समय अब भी बोला जाता है। "ललित" का अर्थ है कि 'नवरात्र' आदि उत्सवके अन्तिम दिनकी रात्रिमें 'उत्सव देवता' सिंहासनपर आरूढ हो गया है, ऐसी कल्पना करके वासुदेव, दण्डिगण, आदि ईश्वर भक्तोंके वेष धारण किये जाते हैं और हरएक वेषधारी अपने सम्प्रदायके अनुसार देवतासे प्रसादकी याचना करता है और बादमें वह उपस्थित लोगोंको बॉटा जाता है।

सज्जनगडपर शिवाजीने स्वामीजीकी सारी व्यवस्था कर दी। उनका नित्य कम सागोपाग हो जाया करता था। गुरु–शिष्य सवाद वार वार हुआ करते थे। एक दिन सायकालके समय शिष्योंसे किले की छत पर बातचीत हो रही थी। इतनेमें आँधी आई। स्वामीजीके बदनपर अगोछा था। वह जोरकी हवासे छतके नीचे गिर गया। तुरन्त ही उनके चतुर शिष्य कल्याण अगोछा लानेके लिए कूद पडे। दूसरे शिष्य चिल्लाने लगे 'कल्याण मर गया' 'कल्याण मर गया' इसपर स्वामीजीने कहा कि कल्याणकी मृत्यु बिल्कुल असम्भव। जिसका नाम कल्याण है उसकी मृत्यु कैसी? इतनेमें अंगोछा लेकर कल्याण आ गये और स्वामीजीके सामने रखकर साष्टाग नमस्कार किया। सबोंको आश्चर्य हुआ। कल्याण सचमुच धैर्यवान, दृढ़मता और अति तत्पर शिष्य थे।

संवत् १७०८ में एक दूत उनके बन्धु श्रेष्ठसे एक पत्र लेकर आया। तुरन्त ही स्वामीजीने उसका उत्तर दिया। उत्तरमें स्वामीजीने माता और श्रेष्ठके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। नमूनेके लिए यहाँ एक एक ओवी दी जाती है। माताकी स्तुति करते हुए आप लिखते हैं:—

"तूं सर्व सुखाची मूस। तूं रत्नांची मादूस। तुझेनि चुकती सायास। संसारींचे॥ ऐ माता! तू सब सुखोंका साँचा है। तू रत्नोंका ढेर है। इस भवसागरके संकट तुम्हारी बदौलत ही नष्ट होते हैं।"
श्रेष्ठकी स्तुति करते हुए लिखते हैं:—

'श्रीगुरु भजनीं तत्पर। स्वामी कृपा निरंतर। म्हणोनि शुद्ध क्रियेचा उद्धार। तुमचे ठायीं॥'

तुम श्री सद्गुरु के भजनमें सावधान हो और तुमपर स्वामी श्री रामचन्द्रजीकी सदैव कृपा है। इसलिए तुम में शुद्ध क्रिया वास करती है।"

स्वामीजीने दूतसे कहा कि हम यहाँ शीघ्रही आ जाएंगे। इस के बाद स्वामीजी चाफल गये। वहाँ की व्यवस्था देखकर दिवाकर गुसाईं को कुछ सूचनाएँ देकर अगले कार्य की रूपरेखा बनाई।

संवत् १७०९ के रामनौमी के समारोह में स्वामीजी जाम्ब में उपस्थित थे। माताजी और श्रेष्ठ के साथ कुछ दिन रहकर भक्ति प्रेम का अमृतपान किया। उनका आशीर्वाद लेकर स्वामीजी वहाँसे मातापूरकी ओर चल दिये। मातापूरमें देवी और श्री अवधूतजी का दर्शन किया। तत्पश्चात् इन्दूर-बोधन नामक क्षेत्रमें गये। वहाँके एक बड़े बगीचेमें उन्होंने निवास किया। यहाँ स्वामीजीने कोयलेसे एक पत्थरपर 'प्रताप मारुती'का चित्र खींचा। एक मठ स्थापित करके उसमें कोदण्डधारी श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तिकी स्थापना की। स्वामीजी कुछ दिनोंतक वहाँ ठहरे, नये शिष्योंको अपने संप्रदायमें समाविष्ट किया। लोगोंको उपासनाका उज्ज्वल मार्ग बतलाया। उद्धव गुसाईंको वहाँ मठाधिपति नियुक्त किया।

संवत् १७११ में मातापूरसे स्वामीजी फिर जाम्ब गये। वहाँसे माताजी और श्रेष्ठका आशीर्वाद लेकर शिवाजीका बुलावा आनेपर चाफल की ओर

निकले। बीचमें इसी वर्षके फाल्गुन शु १५ के दिन तिसगाव नामक गावमें दिनकर नामक शिष्यपर अनुग्रह किया। मठ स्थापित करके उन्हें वहाँ का मठाधिपति बनाया। दिनकर सभी शिष्योंमें अत्यन्त बुद्धिमान समझे जाते थे।

इस समय राजनैतिक परिस्थितिमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। शिवाजी अब हलचल पैदा करनेके लिए अधीर थे किन्तु उनके मन्त्री इसके पक्षमें नहीं थे। स्वामीजीसे परामर्श करनेपर उन्होंने कहा।

" पाहोन समजोन कार्य करणें। तेणें कदापि नये उणें॥

अर्थात् देखकर और जाँच पडतालकर काम करनेसे कभी भी अपयश नहीं मिलता।" यह विचार शिवाजीके तरुण अन्त करणके विरुद्ध था जिससे उन्हें विरक्ति सी हुई और 'जितना सम्पादन किया उतना समर्पण' ऐसा एक चिट्ठीपर लिखकर, स्वामीजी भिक्षाके लिए निकले हुए देख उन्होंने उनकी झोलीमें वह चिट्ठी डाल दी। चिट्ठी पढकर स्वामीजीको आश्चर्य हुआ। 'सावधानी' का उपदेश देकर स्वामीजीने शिवाजीको भली भाँति समझाया कि "अपने अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार चलनेसे मानव जीवन सार्थक हो जाता है। केवल किसीके भरोसेपर न रहकर अपना अपना विचार करना चाहिए। धैर्य धारण करना चाहिए। देहको होनेवाले कष्टोंका मुकाबला करके लगातार यत्न करना चाहिए। ऐसा यत्न करनेपर अन्तमें सुख ही होगा। इसलिए एकान्तमें सोच विचार करके निश्चय करना चाहिए। शत्रु और मित्रोंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारसे उपाय-योजना करनी चाहिए। कर्तव्य कर्म करते हुए कष्ट करने पडते हैं इसलिए ऊब जानेसे तथा विचारोंमें आलस्य उत्पन्न होनेसे बुद्धि विचलित होती है। अपने मनको रोककर दूसरोंके अन्त करणकी खोज करनी चाहिए। अपना मन चचल न हो इसलिए भी यत्न करना चाहिए। राजकाजमें सूक्ष्मतया निरीक्षण करना पड़ता है, जो कुछ गतकालमें किया हुआ हो उसे फिरसे करना पडता है और जो पहले सशोधित किया गया हो उसे फिरसे सशोधित करना पडता है। 'इशारतीचें बोलता नये। बोलायाचें लिहूं नये। लिहावयाचें सागू नये। जनानीं॥ अर्थात् ऐसा कुछ न बोला जाय कि जिससे औरोंको इशारा मिले। जो कुछ बोलने का हो उसे लिखा न जाय, जो कुछ लिखने का हो वह वाणीसे बोला न जाय।' राजकाजमें

इतनी सावधानी आवश्यक है। राजा को चाहिए कि वह ऐसा सावधानी का राजकाज करके गो ब्राह्मण प्रजा पालक हो।"

इस प्रकार स्वामीजीने शिवाजीसे राज्यभार पहले की तरह उठाने को कहकर उस समय चिन्ह के रूपमें अपना एक भगवा वस्त्र दिया। शिवाजीने स्वामीजीकी आज्ञाको सिरपर धारण करके अभिवादन किया। कहा जाता है कि शिवाजीने उस भगवे वस्त्रको अपने राज्यका ध्वज बनाया। इस भगवे वस्त्रमें त्याग का सकेत है।

इसी समय स्वामीजीको समाचार मिला कि उनकी माता आसन्न-मृत्यु हुई है, इसलिए वे तुरन्त ही जाम्ब चले गये। भाग्यवशात् माताजी का दर्शन हुआ। माताजीने अपनी लोकयात्रा अत्यन्त शान्तिसे समाप्त की। इस समय उनके दोनों पुत्र उपस्थित थे। और्ध्वदेहिक क्रिया तथा कर्मान्तर करके स्वामीजी सवत् १७१२ के ज्येष्ठ मासमें सज्जनगड लौटे और तुरन्त ही कर्नाटकमें चले गये।

मार्गमें स्वामीजी मिरजमें थोड़े दिनके लिए रुक गये। वहाँ जयराम स्वामीके हरिकीर्तनका कार्यक्रम चालू था। किन्तु किसी कारण वहाँके यवन अधिकारीने जयराम स्वामीको कीर्तन करनेके लिए मना किया। इसपर स्वामीजीने (रामदासजी) उस अधिकारीको अनुभवके साथ समझाया कि सभी धर्मोंके तत्त्व एक ही होते हैं। भविष्यमें किसीके भी धर्ममें इस प्रकार रुकावट न डालनेके लिए स्वामीजीने कहा। उसको निश्चय हुआ कि स्वामीजी एक अद्वितीय पुरुष हैं और वह उनकी शरणमें गया। बादमें स्वामीजीने मिरजमें मठ स्थापित किया और अपनी शिष्या वेणाबाईको वहीं मठकी देखभाल करनेके लिए रखा।

चिकोडी (जिला बेलगाव) मे तिमाजीपन्त देशपाडेका भक्तिभाव देखकर स्वामीजीने उनपर अनुग्रह किया। इस प्रकार स्वामीजी धर्म कार्य करते करते कार्तिक मासमें तजावर (चदावर) पहुँचे। उसी मासमें स्वामीजीने व्यकोजीपर अनुग्रह किया। चदावरकी परिस्थिति की खबर एक विश्वासपात्र शिष्यके द्वारा शिवाजीको दी गई। आगे स्वामीजी रामेश्वर गये। तीर्थयात्रा समाप्त कर स्वामीजी लौटे। मार्गमें मध्वाचार्यसे भेंट हुई। वे निश्चित रूपसे जानते थे कि

स्वामीजीमें अलौकिक गुण हैं। वे जनोंका उद्धार करनेवाले है। कुछ दिनोंके बाद स्वामीजी चाफल की ओर निकले। शिवाजीको खबर मिली कि स्वामीजी आ रहे हैं। वे स्वामीजीका दर्शन करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक थे। शिवाजी अपने लवाजमेके साथ स्वागत करनेके लिए 'तोरगल' नामक ग्रामतक गये। बड़े सम्मानके साथ चाफलमें स्वामीजी लाये गये। बहुत कालके बाद गुरु-शिष्यकी भेंट हुई थी। उनमें प्रेमके साथ बातचीत हुई। चन्द्रराव मोरे को कैदकर पुणे में रखा गया था। जायली संवत् १७१२ के पौष और रायरी सं. १७१३ के वैशाख मासमें हस्तगत किये गये थे, यह देख स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सं. १७१३ के आषाढमें स्वामीजी हेळवाक (पाटण तहसील) गये। इस प्रान्तका सृष्टि सौन्दर्य आह्लादजनक है। यह हेलवाक की गुहा घने जंगलमें है। कोंढवले और धनगरवाडीके आगे यह गुहा है। इसकी लम्बाई ९८ हाथ और चौड़ाई १५-३० हाथ है। पाँच दालान है। एक दालानमें घुड़साल थी। यहाँ रीछ और बाघ बहुत हैं। स्वामीजी एक मासतक यहाँ ठहरे और श्रावण मासमें पाटणके रास्तेसे चाफल गये।

शिवाजी पौष मासमें स्वामीजीसे मिलने चाफल गये थे। अनन्तर वे प्रतापगड गये। यह किला मज़बूत करके उसकी मरम्मत समाप्त की। यह किला शिवाजीको बहुत पसन्द था। संवत् १७१४ में इस किलेके प्रवेश समारोहके समय स्वामीजी उपस्थित थे। उनको खास निमन्त्रण भेजा गया था। इस प्रकार स्वामीजीके आशीर्वादसे और अपने बलसे अपना राज्य ठीक करनेका यत्न लगातार नौ वर्षतक किया और भविष्यकी चढ़ाईके लिए जबर्दस्त तैयारी की। 'एक पैर स्थिर करके दूसरा उठाना' यह उनकी नीति थी।

बीचके कालमें अवसर मिलतेही उन्होंने कल्याण और भिवंडी फिरंगियोंसे अधिकारमें कर लिये। शिवाजी तीसरी सत्ताका हस्तक्षेप नहीं चाहते थे। आदिलशाहको समझाया गया कि यह काम उनके हितके लिए ही किया गया था। आगे शिवाजीने अपने अधिकारी कल्याण-भिवंडीमें नियुक्त किये। आदिलशाहीमें भी राज्ययन्त्र ठीक नहीं था। संवत् १७१५ के अगहनमें अच्छे समय का विचार करके शिवाजीने कर्नाटकपर चढ़ाई की। स्वामीजीने कर्नाटक

में जाकर पहले ही लोकसंग्रह किया था। बहुतसे शिष्य उनके अनुगृहीत थे। धर्म स्थापनाका कार्य उनके शिष्योंके द्वारा धीरे धीरे चल रहा था।

शिवाजीकी हलचलको देख बीजापूर दरबारने अब शिवाजीको परास्त करनेका निश्चय किया। कर्नाटकसे लौटते समय शिवाजीको खबर मिली कि इस कामके लिए अफजलखान नामक फौलादी सरदार की नियुक्ति की गई है। अब यह काम सचमुच शिवाजीके लिए कठिन था। युक्तिसे ही काम लेना चाहिए था। सोच विचारकर शिवाजी स्वामीजीके पास सतारा गये। स्वामीजीसे परामर्श कर आशीर्वाद लेकर प्रतापगडकी ओर चल दिये। वहाँ शिवाजीने भवानीकी आराधना की। देवीने भी अभय दिया। उस समय अपने पराक्रमके बलके साथ शूर लोग दैवी बलका भी भरोसा करते थे। कहा जाता है कि उधर अफजलखान भी अपने गुरुसे मिलने गया। उन्होंने अफजलखानको इस काममें न पड़नेकी सलाह दी थी। उसको निश्चय हुआ था कि गुरुके कथनानुसार अब कोई समर जीतनेकी आशा नहीं। सो, चढ़ाई करनेके पूर्व अफजलखानने अपनी साठ पत्नियोंका देहान्त किया ताकि उनको उसके पश्चात् कोई भ्रष्ट न करे। कहनेका तात्पर्य यह कि उस समय देवी, देवता, गुरुजनोंपर शक्तिशाली लोगोंकी भी अटल श्रद्धा थी।

शिवाजी माघ मासमें (सं. १७१५) अपने मंत्रियोंके साथ चापल गये थे। फिर दूसरी बार उसी वर्षके फाल्गुन मासमें उनकी भेंट हुई। स्वामीजीने सलाह दी कि शक्तिके साथ युक्तिकी भी आवश्यकता होती है। बलवान शत्रुका सामना युक्तिसे ही करना चाहिए। स्वामीजीने शिवाजीको आशीर्वाद दिया और भवानी माताकी उपासना करनेका आदेश दिया। स्वामीजी सं. १७१६ के चातुर्माससें महाबलेश्वर क्षेत्रमें थे। बीचके कालमें अर्थात् सं. १७१५ के माघ या फाल्गुनमें स्वामीजीने चाफलमें पं. सदाशिव शास्त्री बेवलेकर नामक शिष्यको अनुग्रह देकर उसका नाम वासुदेव पंडित रखा। कण्हेरी (शिरवल) में उसको मठाधिपति नियुक्त किया।

शिवाजी इस समय राजनैतिक हलचलमें अत्यंत तत्पर थे। सब कार्य सावधानीसे चल रहा था। संवत् १७१६ के मार्गशीर्ष में अफजलखान प्रतापगड पर असाधारण युक्तिके साथ शिवाजीसे मारा गया। उनकी सेनाका

भी संहार किया गया। यह विजय श्री लेकर तुरन्तही शिष्य गुरुजीका दर्शन करनेके लिए निकले। शिवाजीको देखते ही स्वामीजीने उनके सुयशकी बड़ी सराहना की। कहा जाता है कि इस समय 'दासबोध' लिखने का काम चल रहा था। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि अठारहवें दशक का छठवा समास 'उत्तम पुरुष निरूपण' इसी समय लिखा गया।

इस प्रकार गत दस वर्षों के भीतर स्वराज्य की नीव डाली गई। अब भी बहुत कुछ करना था। शिवाजी को नैतिक प्रोत्साहन सदैव मिलता था, इसलिए उन्हें विश्वास था कि किसी भी आपत्तिका सामना स्वामीजी के आशीर्वादसे किया जाएगा। स्वामीजी और शिवाजी का साथ, शक्ति युक्तिका संगम था और दोनों भी निरपेक्ष भावसे जनोंके उद्धारार्थ और लोककल्याणार्थ कार्य कर रहे थे, किन्तु अपने अपने क्षेत्रमें। विश्वास पात्र, शूर और चतुर लोगों का संग्रह हुआ। लोगोंमें अपने न्यायी और बलवान मुखिया के प्रति आदर और विश्वास उत्पन्न होने लगा। स्वामीजीकी तेजस्विता प्रसिद्ध होने लगी।

१३
धर्म संस्थापना

मध्यकाल
(स. १७१७ से १७३०)

यह स्वामीजीके धर्मस्थापनाके कार्यका बीचका काल या मध्यवर्ती काल है। स्वामीजीने प्रथम बारह वर्षतक (स. १६६५-१६७७) गृहवास किया; दूसरे बारह वर्षतक (स. १६७८-१६८९) तपस्या की; तीसरे बारह वर्षतक (स. १६९०-१७०१) तीर्थयात्रा की और मोटे तौरपर चौदह वर्षतक (स १७०२-१७१६) धर्मसंस्थापनाकी नींव डाली। यह धर्मसंस्थापना का प्रारम्भकाल था। इस कालमें स्वामीजीने अपने संप्रदायके द्वारा लोगोंमें पर्याप्त मात्रामें क्षमता उत्पन्न की। ऐसे साहित्य का निर्माण किया कि जिसके पढनेसे या सुननेसे लोगोंके मनमें, उनके स्वाभिमान, स्वराष्ट्राभिमान और

स्वधर्माभिमान का जागरण हो, उनके नित्य व्यवहारमें सदाचार, सद्भावना, सत्यनिष्ठा, निःस्पृहता और विवेक आदि सद्गुणोंका उत्कर्ष हो; हरएक प्रसंगमें सावधानी; ईश्वरके प्रति अटल श्रद्धा और आत्मकल्याणकी अभिलाषा उत्पन्न हो। अभक्तिपर्यवसायी कर्मकाण्ड और ढोंगी धर्मनिष्ठाका भंडाफोड़ किया। कोदण्डधारी श्री रामचन्द्रजीकी उपासनाको बढ़ाकर संगठन किया। लोगोंको व्यायाम शील बनाया। राजाके प्रति अपने कर्तव्य-पालन का महत्त्व लोगोंको समझा दिया। उसके गुणोंको बताकर प्रजामें उसके प्रति प्रेम उत्पन्न किया।

अब धर्मसंस्थापनाका यह मध्यकाल था। स्वामीजीने देखा कि लोगोंमें धार्मिक चेतना उत्पन्न हो गई है। स्वधर्मसे चलनेवाला राजा मिल गया है। लोगोंको अपने कर्तव्यका ज्ञान होने लगा है। किन्तु यह सब धीरे धीरे चल रहा था। जब यह क्रम दीर्घकालतक चलता है तभी धर्मका अधिष्ठान स्थायी होता है। इसका उपाय उपासना; सत्कर्म और संत्सगतिका आचरण ही था। अब इन तीनों साधनोंका अविरत आचरण लोगोंके द्वारा करवाना था। इस लिए स्वामीजीने सोचा कि अपने शिष्योंके द्वारा उपासनादि ज्वलंत साधनोंका लोगोंमें अधिकतर प्रचार करना आवश्यक है। उन्हें इहलोक तथा परलोक का साधन करनेकी ओर प्रवृत्त करना चाहिए। इस हेतु साध्य करनेके लिए स्वामीजीने अधिक सच्छिष्य और महंत तैय्यार करनेका कार्य प्रारम्भ किया। जो पहले से ही महंत हो चुके थे उन्हें स्वामीजीका यह आदेश था कि:—

> सोइऱ्या धाइऱ्यांची मुलें। तीक्ष्ण बुद्धींचीं सखोलें।
> तयासी बोलणें मृदु बोलें। करीत जावें ॥ १ ॥
> निकट मित्री बरी होतां। मग त्यांसी न्यावें एकान्ता।
> म्हणावें रे भगवंता। कांहीं तरी भजावें ॥ २ ॥
> मान्य होतां जप सांगावा। मग तो इकडे पाठवावा।
> मग तयाचा सकळ गोवा। उगवूं आम्ही ॥ ३ ॥

अर्थात् रिश्तेदार या इष्ट मित्रोंके तीव्र बुद्धिवाले जो बालक हों उनके साथ हमेशा मधुर शब्दोंका व्यवहार करना चाहिये। इस तरह अच्छा परिचय होनेपर उन्हें एकान्तमें ले जाकर प्रेमसे कह देना कि भगवानकी सेवा तो

हरएक को कुछ मात्रामें करनी ही चाहिए तभी जन्मकी सार्थकता है। उनके इस बातको मान्य करनेपर उन्हें जपके मंत्रकी शिक्षा देना और हमारे पास भेजना। बादमें हम उनको ठीक शिक्षा दीक्षा देकर कार्यक्षम करेंगे।"

स्वामीजीने इस प्रकार शिष्य बनवाये जो बहुत ही चतुर और अक्लमंद थे। उन्हें सभी प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक शिष्यका स्वास्थ्य भी अच्छा था। उनके शिष्य केवल ब्राह्मण वर्णके ही नहीं बल्कि अन्य वर्णोंके भी थे। अधिकारानुसार उन्हें उपदेश दिया जाता था। किन्तु 'श्रीराम जयराम जय जयराम' इस मंत्रका जप सबोंके लिए समान था।

जयरामस्वामी, रंगनाथस्वामी, आनन्दमूर्ति और केशवस्वामी के साथ स्वामीजीका अति निकटका सम्बन्ध था। ये चारों सन्त स्वामीजीका अति आदर करते थे। हरएक काममें स्वामीजीकी मदद करते थे। इन्होंने समर्थ सम्प्रदायमें कई शिष्योंको समाविष्ट किया। इस प्रकार सम्प्रदाय प्रगतिपथपर था। उपर्युक्त चार सन्त और स्वामीजी, इन पाँचोंको लोग **समर्थ-पंचायतन** कहा करते थे।

इसके अतिरिक्त स्वामीजीके समय दासोपंत, विष्णुदासनामा, माधवदास, कृष्णदास, मुद्गल, रमावल्लभदास, शिवकल्याण, श्रेष्ठ, वामनपंडित, रघुनाथ पंडित, आनन्दतनय, विट्ठल, वेणाबाई, बहिणाबाई और बया, ये प्रसिद्ध कविवर और कवयित्रियाँ थीं। इन्होंने धर्म संस्थापनामें स्वामीजी को सहयोग दिया और उपासनामार्ग को बढ़ाकर लोगोंमें संगठन किया।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि संवत् १७१५ और १७१७ के बीच जब शिवाजी का अड्डा जाम्बके नजदीक राक्षसभुवनमें था तब स्वामीजीके बन्धु श्रेष्ठ और शिवाजीकी भेंट हुई थी। शिवाजीने देखा कि वे भी एक सत्पुरुष और महान भगवद्भक्त हैं। वहाँ से लौटते समय बीचमें शिवाजी स्वामीजीसे मिले और श्रेष्ठ का कुशल समाचार कहकर प्रतापगड पहुँचे।

संवत् १७१७ के पौष मासमें स्वामीजी परलीसे पाली होकर चाफल जा रहे थे। पालीमें उन्होंने देखा कि दो शाहीरोंमें (चारण या भाट) प्रश्नोत्तरीकी होड़ लगी थी। भीड़ हो गई थी। स्वामीजीने विनोदसे पूछा कि यह क्या हो रहा है? नतमस्तक होकर दोनों शाहीरोंने सब वृत्तान्त कह दिया।

उसे सुनकर स्वामीजीने दोनोंको भी चुनौती दी और उत्तर देने के लिए बाध्य किया किन्तु वे उत्तर दे न सके। प्रश्न पद्यमें ही पूछे गये। प्रश्न अत्यन्त मार्मिक थे। इसका भावार्थ इस प्रकार है:—"पृथ्वीका वजन कितना है ! आकाशका विस्तार कितना है ? समुद्रमें कितना पानी है ? आकाशमें कितनी वायु है ? पर्जन्यकी कितनी बौछारें हैं ? भूमिपर कितने तृण है ? पृथ्वीके कितने परमाणु हैं ? समस्त पृथ्वीमें कृमि कीटकादि योनियोंकी तादाद कितनी है ? वनस्पति पुष्प, फल आदिकी जातियाँ कितनी हैं ? वरगद और पिप्पलके फलोंके बीज कितने हैं ? सब धानोंकी गिनती एक एक करके कितनी है। नदियों तथा समुद्र किनारेपर बालुका कण कितने हैं ? इस प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डकी जोड़ कितनी हुई ?" अंतमें स्वामीजीने दोनोंको उपदेश दिया कि परमात्माकी सृष्टिमें बहुत चमत्कार है और उनकी शक्ति अपार है। इस बातपर जरा गौरकर देखो और अपनी अहंता का त्याग करो। नीरे वितण्डावादमें क्या लाभ है ? अहंताका त्याग होते ही स्व-स्वरूपका ज्ञान हो जाएगा। ज्ञान होनेपर आनन्दमग्न होकर तुम सुख पाओगे।" देखिये, स्वामीजीकी तेज बुद्धि ! सभी श्रोता आश्चर्यसे अवाक् हो गये। सबोंने स्वामीजीके उपदेशके अनुसार आचरण करनेकी ठानी। शाहीरोंको अभय देकर स्वामीजीने चाफलके लिए प्रस्थान किया।

स्वामीजी प्रायः ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णोंके लोगोंको उनके आचार विचार और व्यवहारके सम्बन्धमें अपने दासबोधादि ग्रन्थोंके द्वारा उपदेश देते थे। उन्हें षड्यन्त्रोंसे सतत सचेत रहने और दुष्टोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए कहा करते थे। एकबार सैनिकोंने युद्ध प्रसंगमें हिम्मत हारनेकी नौबत आ पड़नेपर अब क्या उपाय है ऐसा प्रश्न पूछा तो स्वामीजीने बताया कि हरएककी भुजामें या गलेमें हनुमानजीका छोटासा पदक हो जिसके दर्शनसे हनुमानजी के समान वीरश्री आ जाएगी। तुरन्त ही शत्रु सेनाका संहार हो जायेगा। स्वामीजी कभी भी किसीको उपदेश देनेमें भेदभाव नहीं रखते थे। राजासे रंकतक वे ममताकी दृष्टिसे देखते थे। चार पाँच वर्षके भीतर स्थानस्थानमें स्वामीजीके शिष्य हो गये थे।

एकबार संवत् १७२२ में स्वामीजीको समाचार मिला कि शिवाजी

सभाजीके साथ आगरामें औरंगजेबके द्वारा नजरबन्द किये गये। जयसिंहके साथ सुलह करने के बाद औरंगजेबका सुलह करने के लिए बुलावा आनेपर शिवाजी अपने पुत्रके साथ आगरामें गये थे। अब रिहाई कैसे हो ? शिवाजीके मन्त्रिमण्डलमें उपाय सोचे गये। कहा जाता है कि स्वामीजीके शिष्योंने भी इसमें हाथ बँटाया। स्थान स्थानपर स्वामीजीके चतुर शिष्योंने निर्भयतासे शिवाजीकी सहायता की। शिवाजी इस प्रसंगमें से कैसे पार हो गये यह सभीको इतिहासके द्वारा भली प्रकार विदित ही है। ऐसे कठिन अवसरपर स्वामीजीके महन्त और शिष्य सचमुचमें उस समयके सच्चे और निरपेक्ष राष्ट्रसेवक थे। शिवाजी केवल तीन चार महीनेमें अपनी यात्रा निडरतासे और सुरक्षित रूपसे समाप्त कर सके। संवत् १७२३ के श्रावणमासमें वे प्रतापगड आ पहुँचे।

संवत् १७२८ तक की राजनैतिक परिस्थिति बडी विचित्र थी। संवत् १७२५ के उपरान्त पुनश्च मुगलोंके साथ मुठभेड हुई और यह लगातार दो तीन वर्षतक जारी रही। आखिर मुगलसेना सामना करते करते थककर वापस लौट गई। यहाँ भी दूसरी ओर बीजापूरमें सनसनी फैल गई। मिरज प्रान्तका सूबेदार बहलोलखान, खवासखान की आज्ञासे पन्हाला जानेवाला था और वहाँसे शिवाजीको परास्त करनेका उनका काम था। यह खबर शिवाजीको मिलतेही बडी चपलताके साथ उन्होंने बहलोलखानके जानेके पहले ही छापा डालके उसे अधिकारमें कर लिया जिससे बीजापूरमें और ही भय उत्पन्न हो गया।

उस समय इसी पन्हाला के प्रदेशमें धर्म प्रचारार्थ स्वामीजी सञ्चरण करते थे। संवत् १७२८ के माघमें वे केशव और मानजी गुसाईं के साथ पन्हाला के नजदीक पारगावमें आये। वहाँ दिवाकर गुसाईं की आवश्यकता हुई इसलिए केशव उन्हें लानेके लिए चाफल गये। दिवाकर तदनुसार पारगाव गये। पारगाव का प्रचारकार्य अत्यन्त महत्व का था। रामनौमीका समारोह भी नजदीक आया। स्वामीजी और दिवाकरको चाफल जाना मुश्किल हो गया। इसलिए निश्चय हुआ कि चाफलसे श्रीराम मूर्ति लाकर पारगावमेंही उत्सव हो। चाफलसे मूर्ति लायी गई। दिवाकरने केशवको भी बुलाया था किन्तु बीमार होनेके कारण वे न आ सके और उन्होंने एक पत्र भी दिया। इस समय कुछ

कार्यवश शिवाजी भी वहाँ गये थे और वे समारोहमें उपस्थित थे। केशवने दिवाकरको सं. १७२९ में चाफलसे जो पत्र सूचनार्थ लिखा था उसमें कुछ सावधानी की सूचनाएँ दी गई थी कि शिवाजीको वहाँ शत्रु प्रदेशमें कुछ धोखा न होने पावे ऐसी व्यवस्था हो। समारोह के पश्चात् स्वामीजी और दिवाकर चाफलकी ओर निकले।

उसी संवत् के श्रावणमासमें शिवाजी स्वामीजीका दर्शन करने आये थे। स्वामीजीका दर्शन शिंगणवाडीमें हुआ स्वामीजीने शिवाजीको इस समय अध्यात्मका रहस्य समझाया। शिवाजी रहस्य समझ गये। वैसे तो शिवाजी पहले से ही अत्यंत भावुक थे। सद्गुरु वचन पर पूर्ण विश्वास था। शिवाजीने सेवाके लिए स्वामीजीसे प्रार्थना की। इस तरहकी प्रार्थना उन्होंने कितनी ही बार की थी। किन्तु स्वामीजी निःस्पृह होनेके कारण ऐसी प्रार्थनाको अबतक स्वीकार नहीं करते थे। अब इस बार प्रार्थनाको स्वीकार करना पड़ा क्यों कि स्वामीजीने सोचा कि हरबार प्रार्थनाको अस्वीकार करना उचित नहीं है। स्वामीजीसे अनुमति मिलते ही नित्य उत्सव, यात्रा आदि की व्यवस्थाके लिए जावली सूबेकी आमदनी शिवाजीने नियुक्त कर दी। शिवाजीने दत्ताजी त्रिमलको आज्ञा दे दी कि श्री रामनौमीके महोत्साहका खर्च सरकारके द्वारा किया जाय। दत्ताजी वाकेनवीस को पत्र लिखा कि चाफलके उत्सवका पूरा इन्तजाम उस सूबेके अधिकारी करें।

इसी वर्षके फाल्गुन मासमें एक रात्रिमें केवल साठ चुने हुए सैनिकोंकी सहायतासे कोण्डाजी फर्जदने पन्हाला किला हस्तगत कर लिया। उनका यह पराक्रम देख शिवाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसका अभिनन्दन किया। शिवाजी तुरन्त पन्हाला जानेके लिए निकले। मार्गमें पोलादपूरमें स्वामीजीका दर्शन किया और संवत् १७३० के चैत्रमें वे पन्हाला पहुँच गये। बादमें स्वामीजी भी पन्हालाके लिए पधारे। वहाँ अमात्यके यहाँ शिवाजीके प्रार्थना करनेपर स्वामीजीका भक्ति प्रेमपूर्वक रसभरित हरिकीर्तन हुआ। स्वामीजीका कीर्तन श्रवणकर सभी प्रसन्न हुए। दूसरे दिन स्वामीजी वहाँसे दूसरे स्थान चले गये। शिवाजीने भी कर्नाटकमें सवारीके लिए प्रस्थान किया।

येलूरके अड्डेमें एक बार शिवाजीकी प्रवृत्ति पूर्ण वैराग्यकी ओर गई थी। परन्तु स्वामीजीके उपदेशकी स्मृति हुई और फिरसे वे अपने कर्तव्यकर्ममें रत हो गये। इस प्रकार इन दोनों महानुभावोंका धर्म-संस्थापना और स्वराज्य-स्थापनाका कार्य स्वतंत्र रूपसे सतत चल रहा था।

१४
धर्म संस्थापना

उत्तरकाल
(सं. १७३१-१७३८)

संवत् १७३१ धर्म-स्थापना रूपी मन्दिर का स्वर्ण शिखर ही माना जाएगा। निकट भूतकालमें धर्म और राष्ट्रपर जो संकट आ गया था उसका अब निर्मूलन हो गया। इतने वर्षोंकी दीर्घ तपस्या का फल इसी सालमें हुआ। दुष्टोंका दमन हुआ और जनता निर्भय हो गई जिसका सारा श्रेय ज्ञानेश्वर आदि पूर्ववर्ती सन्तों, स्वामीजी और शिवाजीको ही है। स्वामीजीने

" यही तो चेतवावा रे । चेतवीतांचि चेततो ।

भावार्थ-समाजमें चेतना उत्पन्न करो जिससे वह जागरित होता है।" कहकर कार्यकर्ताओंको संगठित किया। शिवाजीने तो क्षात्र धर्मोचित वीर वृत्तिका आश्रय करके महाराष्ट्रको कई वर्षोंकी पराधीनता से मुक्त कर दिया। ऐसे स्वधर्म-रक्षक और स्वराज्य-संस्थापक श्री शिवाजी महाराजके राज्याभिषेक का आयोजन मंत्रियोंके विचारसे इसी सालमें हुआ। उसके अनुसार सब तैय्यारियाँ प्रारम्भ हुईं। काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित गागा भट्टजी बड़े सम्मान के साथ पैठणसे बुलवाये गये।

वहाँ कर्नाटकमें येलोरका किला मज़बूत करके शिवाजीने उसकी सारी व्यवस्था रघुनाथजी, हणमन्ते, के हाथमें सौंप दी। इसके बाद, शिवाजी चाफल लौटे, स्वामीजीका दर्शन किया और उन्होंने सवारीका विस्तार पूर्वक वृत्तान्त स्वामीजीसे कथन किया। स्वामीजीने भी राज्याभिषेकके आयोजनके सम्बन्धमें

शिवाजीसे बातचीत की। तदनुसार रायगडको प्रस्थान करनेके पूर्व चाफलमें स्वामीजीको सद्गुरुके नाते मङ्गल स्नानादि उपचार किये गये। राज्याभिषेक की तिथि (संवत् १७३१) शक १५९६ ज्येष्ठ शु. १३ थी। उस समय अष्ट-प्रधानोंके समक्ष शास्त्रके अनुसार सभी राजोपचार किये गये। पं. गागाभट्टजी और दूसरे विद्वान ब्राह्मणोंने राजाको आशीर्वाद दिये। कहा जाता है कि इस समारोहमें बहुत धन खर्च किया गया। इसी दिनसे 'शिवाजी–शक' प्रारम्भ हुआ। सिक्कोंका चलन हुआ। राज्यके कोने कोनेमें आनन्दका वातावरण फैल गया। इसके बाद सज्जनगडमें श्री छत्रपति शिवाजी महाराज स्वामीजीका दर्शन करने आये और वहीं डेढ़ मासतक ठहरे। समस्त जातिके लोगोंको भोजन दिया गया। इस बार शिवाजीने चाफलके रामनौमीके महोत्सव सम्बन्धी सारी व्यवस्था की। आपसमें सब काम बाँट दिया गया। व्यवस्था करनेके बाद शिवाजी महाराज स्वामीजीके आशीर्वाद लेकर रायगड चले गये।

स्वामीजी अब वृद्ध हो गये थें। इसलिए शिवाजी बारबार प्रार्थना करते थे कि अब पाँवसे चलनेका कष्ट न किया जाय, जहाँ कहीं जाना हो तो सवारी लेकर जाएँ। किन्तु स्वामीजी अत्यन्त निःस्पृह थे। उन्हें स्वभावतः वैभव आदिसे घृणा थी। इस सम्बन्धमें वे किसीकी भी नहीं सुनते। अति आग्रह करनेपर और शिष्यका अनन्यभाव देखकर, वे कभी कभी उनकी प्रार्थनाओंकी ओर ध्यान देते थे। स्वामीजी अब चातुर्मासके लिए हेलवाक (तहसील पाटण, जिला सतारा) की गुहामें निवास करने गये। बरसातके दिन थे। तीव्र ठण्ढी और पहाड़ की बस्तीके कारण सड़सठ उम्रके स्वामीजीको ठण्ढीका उपद्रव होने लगा। युवावस्थामें उन्होंने कितने ही शीतोष्ण-सुख-दुःखका सामना किया था परन्तु अब सहा नहीं जाता था। चातुर्मास समाप्त होतेही वे चाफल की ओर घोड़ेपर सवार होकर चले गये। उन्होंने रघुनाथ भट्टजीको वहीं रखा क्यों कि वहाँ कुछ काम करना बाकी था।

चाफल पहुँच जानेपर, श्रीके मंदिरमें अभीष्ट कार्य (स्वधर्म और स्वराज्य-स्थापना) सफल होनेके कारण श्रीका स्तुतिस्तोत्र किया। स्वामीजीने पंडितराय रघुनाथ भट्टजीको पत्र लिखकर–हेलवाकमें जाड़ेके समय जो उन्होंने देखभाल की थी उसके लिए–अनेक गौरवपूर्ण उद्गारोंकी व्यक्त

किया था। यह पत्र स्वामीजीने स्वयं लिखा था। इसके मूल मोडी अक्षरका नमूना—" श्री साम्प्रदायिक कागदपत्रे " प्रथम खण्डमें दिया गया है। वह देखने योग्य है। इस पत्रमें स्वामीजीके सहानुभूतिदर्शक और स्नेहसे परिपूर्ण कोमल हृदयकी झलक स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है। पत्र भेजनेके बाद दिवाकर गुसाईं, विठ्ठल गुसाईं और दो शूद्रोंको साथ लेकर स्वामीजी दाढ़ापूर गये। भाटे वाडीके नजदीक पहुँचनेपर स्वामीजीने औरोंको बिदा कर दिया और स्वतः आगे चले।

संवत् १७३२ के वैशाख मासमें वीरवाडीमें श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की हथेलीमें बिवाईकी बीमारी हो गई। तीव्र वेदनाएँ होने लगीं। समर्थ रामदास स्वामीका स्मरण करते करते उन्हें निद्रा आ गई। सद्गुरुकृपासे आराम होने लगा। दूसरे दिन शिवाजी और स्वामीजीकी भेंट शिवथरकी गुहामें हुई। स्वामीजीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि ऐसा शुभ चिन्ह, दिखाई देता है कि भविष्यमें और भी (देशोंका) लाभ होनेवाला है। आशीर्वाद पाकर शिवाजी बड़ी प्रसन्नतासे अपने अड्डेपर लौट गये। संवत् १७३२ के भादों मासमें पारमाची नामक गाव (शिवथर तहसील) में स्वामीजीके जानेपर शिवाजीने 'रामनगर पेठ' नामक व्यापारी पेठ स्थापित की। बारह वर्षोंतक कुछ कर वगैरह नहीं लिया गया।

इसी वर्ष आगे के दो महीनेमें शिवाजी बिल्कुल अस्वस्थ हो गये। उस समय वे सतारामें थे। स्वामीजी शिवथरमें थे। यह समाचार सुनतेही स्वामीजीने कल्याणको आज्ञा दी कि तुम्हारा नाम कल्याण है इसलिए शिवाजीके यहाँ उनके कल्याणार्थ यह प्रसाद लेकर चले जाओ। कल्याण प्रासादके द्वारपर पहुँच गये। कल्याणको देखते ही शिवाजी मंचकपरसे नीचे खड़े हो गये। प्रसादको आदरके साथ ग्रहण कर तीन बार यह वाक्य बोले " श्री समर्थका प्रसाद लेकर कल्याण गुसाईं आये, अब कल्याण है।" 'और कुछ आज्ञा है?' ऐसा शिवाजीके पूछनेपर कल्याणने कुछ कह दिया। इसपर सोनगावकी गोशालासे शिवाजीने कल्याणको सवत्स ग्यारह गौएँ दे दीं। उन्हें शिरगावके मठमें भिजवाकर स्वामीजीका दर्शन करनेके लिए कल्याणने शिवथरको प्रस्थान किया।

उस समय स्वामीजी पारमाचीमें जामुन के चबूतरेपर सन्तोषपूर्वक बैठे हुए थे। कल्याण आ पहुँचे। वन्दना कर सब वृत्तान्त निवेदन किया। वृत्तान्त सुनकर स्वामीजी कड़क कर बोले "तुम निःस्पृह हो, यह (गौएँ लानेका कार्य) करनेके लिए तुमसे नहीं कहा गया था। श्री की कृपासे दिवाकर गुसाईको यह अधिकार प्राप्त हुआ है। यह सब करना उनका ही काम है। उन्हें इसकी ठीक ठीक जानकारी भी है। मनावनी वृत्तिसे माँगना यह तुम्हारे जैसे निःस्पृहोंका धर्म नहीं है।" इसपर कल्याणने अपना अपराध कबूल किया और क्षमा माँगी।

वैसे तो स्वामीजीका अनुशासन बहुत कड़ा था। दूसरा उदाहरण, एक सौ इक्कीस खडी धान्य पहुँचानेके सम्बन्धमें है। चाफलके देवस्थान के लिए यह रसद लेना स्वामीजीने मन्जूर किया था, क्योंकि शिवाजी एक प्रेमी भक्त थे निःस्पृह स्वभावके कारण स्वामीजीको यह बुरा लगता था। एक बार उन्होंने कह दिया कि 'भविष्यमें एक पाई तक भी द्रव्य और एक दानेतक भी धान्य नहीं भेजना, हमें कुछ नहीं चाहिए।' और पालकी, वस्त्र, अलंकार आदि सब लौटा दिया। यह देखकर शिवाजीको बहुत बुरा लगा। दत्ताजी और दिवाकर गुसाईंने शिवाजीसे कहा कि स्वामीजी अत्यंत निःस्पृह स्वभावके हैं। इसके पहले जो स्वीकार किया गया था वह केवल तुम्हारी भक्तिके लिए और तुम्हें बुरा न लगने पावे इसी लिए ही। किन्तु शिवाजीका समाधान नहीं हुआ। उन्होंने जावलीके सूबेदारको पत्र लिखकर सख्त हुक्म दिया कि श्री समर्थ स्वामीजीकी सेवामें कोई भी कमी महसूस न हो। दोनों किलेके हवालदारोंको आज्ञा दी कि "यदि समर्थ महिपतगड या सज्जनगड जाना चाहें तो उनकी सेवामें सब सामग्री दे दी जाय और उन्हें किंचित् भी परेशानी न हो। जितने लोग स्वामीजीके साथ आएंगे उतने आने दो। रहनेके लिए जगह अच्छी हो। प्रतिदिन उनका हालचाल पूछते जाना। जब वे जाना चाहें तब जानेकी सारी व्यवस्था की जाय।" स्वामीजीने शिवाजीको इसी सवत् १७३२ में शिवथरकी गुहामें अठारह शस्त्र प्रदान किये।

सवत् १७३४ में जब शिवाजी कर्नाटककी सवारीपर गये थे उस समय श्री मोरोपन्त पिंगले, दत्ताजी त्रिमल और अण्णाजी दत्तोने चाफल देवस्थानके

व्यवस्था करनेमें सराहनीय सावधानी रखी थी। व्यंकोजीसे अपना हिस्सा लेनेका काम रघुनाथ हणमन्तेपर सौंपकर शिवाजी सं. १७३४ के कार्तिकमें गदग-लोरगल आये। मुल्क हस्तगत करते करते वे 'गडहिंगलज' गये। वहाँ 'सामानगड' नामक किला बाँधनेका काम चल रहा था। अण्णाजी दत्तो उस कामकी देखभाल करते थे। शिवाजी महाराज काम निरीक्षण करनेके लिए लगभग पौषमें सामानगड पर आये। सहस्रों मजदूर काम करते थे। शिवाजीको गर्व हुआ कि इतने लोगोंका पालन पोषण करनेकी जिम्मेदारी अकेले मेरे ऊपर है। ऐसा सोचते सोचते निरीक्षण चल रहा था। किसीसे कुछ प्रश्न पूछे जाते थे। स्वामीजी उस समय पासमें ही थे। स्वामीजीको यकायक लगा कि इस समय अपने सच्छिष्यका मन अहंकारसे दूषित होता दिखाई देता है। सोच विचार कर तुरन्त ही उसी स्थानपर जहाँ शिवाजीका निरीक्षण चल रहा था वहाँ स्वामीजी आ पहुँचे। स्वामीजी कहने लगे कि आनेजानेके रास्तेपर बीचमें यह बड़ा पत्थर क्यों पड़ा है। स्वामीजीके इतना कहनेपर शिवाजीने वह पत्थर तोड़नेकी आज्ञा दी। स्वामीजीने पत्थर तोड़नेका तरीका बतलाया। स्वामीजीके कथनानुसार पत्थर तोड़ते ही एक मेंढ़क और थोड़ा पानी अन्दरसे बाहर निकल आया। स्वामीजीने शिवाजीसे पूछा कि इसकी चिन्ता या पालन-पोषण किसने किया? शिवाजीको तुरन्त ही अपने भ्रमका ज्ञान हुआ और वे स्वामीजीकी शरणमें गये और बोले कि यह दास क्षमाकी याचना करता है। स्वामीजीने कहा कि "**आम्ही काय कुणाचें खातों रे। श्रीराम अम्हांला देतो रे।** (स. गा. पद १७४४) अर्थात् हम क्या और किसका खाते हैं? वही रामचन्द्रजी हमें देनेवाले हैं और कोई नहीं! किलेके छतपर बड़े बड़े पेड़ उत्पन्न होते हैं, उनको पानी कौन देनेवाला है? माताके स्तनमें बालकके लिए दूध कौन उत्पन्न करनेवाला है? इस मेंढ़कको पानी पिलाकर इसका संरक्षण कौन करनेवाला है? आकाश वस्तुतः सूखा दिखाई देता है; उसमें पानीकी एक बूँद भी नहीं दिखाई देती किन्तु वही सूखा आकाश जमीनको चारों ओर पानीसे उर्वरित करता है! यह सब कौन करनेवाला है? एक रामचन्द्रजीके सिवा दूसरा कोई नहीं। वे ही हमारा पालन-पोषण करनेवाले हैं।" इससे हम, सद्गुरुका सच्छिष्यकी

और आकर्षण और सच्छिष्यका सद्गुरुके प्रति दृढ भाव, देखते हैं। स्वामीजीने शिवाजीसे कहा कि किसी कार्यके कर्ता, सचमुचमें हम नहीं हैं बल्कि परमेश्वर ही है। वह केवल हमारे द्वारा कार्य कराता है इसलिए अहंकार का त्याग करो।

कर्नाटककी सवारीसे लौटते समय मार्गमें शिवाजीने सज्जनगडपर स्वामीजीका दर्शन किया। शिवाजीके मनमें आया कि कर्नाटकमें मन्दिर, गोपुर, अन्नछत्र आदि धर्मकी अनेक उपयुक्त बातें हैं। उनके समान हम यहाँ भी बनवाएंगे। चाफलके देवालयकी इमारत कर्नाटकके देवालयके समान सुन्दर बनवाएंगे। किन्तु स्वामीजीसे पूछनेपर स्वामीजीने कहा कि 'यह तुम्हारी इच्छा अत्यंत उत्तम है, इसे उसी प्रकारही अन्तःकरणमें रहने दो वर्तमान समय इसके उपयुक्त नहीं है। आगे श्रीकी जो इच्छा।' इस कथनसे शिवाजीका समाधान नहीं हुआ। शिवाजीने उस समय इतना ही किया कि स्वामीजीका सज्जनगडका झोंपड़ा रायगडके राजमंदिर जैसा बनवा दिया।

रायगड पहुँचने पर शिवाजी सोचने लगे कि श्री समर्थ रामदास स्वामीकी वृत्ति तो उदासीन है। किन्तु पहलेसे ही उनकी आज्ञा हमें इस प्रकार है कि श्री रामचन्द्रजीका उत्सव समारोह उत्तरोत्तर बढ़कर ही किया जाय, जैसी उसमें वृद्धि होगी उसी मात्रामें राज्यकी भी अभिवृद्धि होगी। स्वामीजीकी आज्ञाका पालन यह इस भक्तका भूषण है। सद्गुरुकी कृपासे और आशीवचनोंसे राज्य-विस्तार होता ही है, तो भी स्वामीजीकी अनुज्ञा वैभव बढ़ानेके लिए नहीं मिलती? उसे क्या किया जाय! सोचते सोचते उन्होंने दत्ताजी त्रिमलके द्वारा दिवाकर गुसाईंको पत्र लिखवाया कि शुभ अवसर पाकर स्वामीजीके पास यह बात निवेदन करके लेखनार्थ आज्ञा लेकर तुरन्त ही रायगड आ जाना और मेरे कहने का आशय भी उसमें निवेदन करना। दिवाकर रायगड आगये। शिवाजीसे मुलाकात हुई। शिवाजीने बता दिया कि ग्यारह ग्रामोंकी नियुक्तिका जो संकल्प हुआ उसके अनुसार उत्सव समारोह किया जाय। दिवाकर बोले कि श्री की आज्ञाके अनुसार हो जायगा। बादमें स्वामीजीके पास सज्जनगड आनेपर उन से

अनुरोध किया गया परन्तु उन्होंने कहा कि अब रहने दीजिए, समय पडने पर थोड़ा ही स्वीकार करो।

संवत् १७३४ के फाल्गुन के अन्तमें समाचार मिला कि 'श्रेष्ठ' अपने परिवार के साथ शिवलि नामक ग्राममें किसी शिष्यके यहाँ विवाहके लिए गये थे। लौटते समय उसी परगनेके दहिफल नामक ग्राममें दोपहर ठहरे हुए थे। उन्होंने लोगोंको स्नान-भोजनादि करनेकी आज्ञा दी। भोजनके बाद भजन करनेके लिए उनसे कहा गया। तत्पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्रको अविरत रामोपासना करनेकी आज्ञा देकर आपने प्रायोपवेशन करके महाप्रयाण किया। वह दिन फाल्गुन व. १३ का था। दो दिनके पश्चात् उनकी पत्नीका भी देहान्त हो गया।

संवत् १७३५ के चैत्र व. १४ को परम भक्ति-मती वेणुबाईका परलोक-वास हुआ। वे एकनिष्ठ सेवक व अच्छी कवयित्री थीं। श्रेष्ठके दोनों पुत्र उद्धव के साथ वैशाख मासमें चाफल आगये। एक वर्षतक वहाँ ठहरे। उनका आचरण उनके पिताजी जैसाही पवित्र था। स्वामीजीका उन दोनों पुत्रोंके प्रति अतीव प्रेम था। एक पुत्र सोलह वर्षका और दूसरा दस वर्षका था। वैशाख मासमें स्वामीजी को खसरेकी बीमारी हुई। कहा जाता है कि इस समय स्वामीजीने प्रतापगड की श्रीराम-वरदायिनी देवीको बीमारीके परिहारके लिए कर्णफूल चढाया। स्वामीजीने देवीसे वरदान माँगा कि "तुझा तूं वाढवी राजा। शीघ्र आम्हाचि देखता। दुष्ट संहारिले मागें। ऐसे ऊदंड ऐकितों, परंतु रोकडे कांहीं। मूळ सामर्थ्य दाखवी॥" अर्थात् तू अपने राजाका हमारे सामने शीघ्रतासे ही उत्कर्ष कर। ऐसा सुना जाता है कि तूने अतीत कालमें बहुतसे दुष्टोंका दमन किया है परन्तु अब अपनी सामर्थ्य फिरसे दिखा।" देवीका प्रसाद और आशीर्वाद लेकर स्वामीजी चाफलको लौट आये।

शिवाजी जब दूसरे किसी समय चाफल आये तब उन्होंने स्वामीजीकी कुछ सेवा करनेकी इच्छा दिखाई फिर स्वामीजीने कहा कि 'शिवबा! तुम्हारे इस भक्ति प्रेमके आगे हम कुछ नहीं कह सकते, सेवा करना चाहते हो तो श्री रामचंद्रजीके देवालय, महाद्वार, सीढ़ियाँ और दो दीपमालाएँ बनवा

दो।' स्वामीजीकी आज्ञाके अनुसार शिवाजी तीन रात्रितक वहीं ठहरे। इसके बाद स्वामीजी तथा श्रेष्ठके दोनों पुत्रोंको साथ लेकर शिवाजी प्रतापगड पर बड़े समारोहके साथ गये। प्रतापगडपर ब्रह्मचर्चात्मक संवाद हुए। शिवाजी महाराजको अति आनन्द हुआ। कुछ दिनोंके बाद सज्जनगड लौटनेके दिन स्वामीजीने बाले-किलेके (पहाड़ी किलेमें ऊँचा छोटा किला) दरवाज़ेके समीप हनुमानजीकी स्थापना की। श्रेष्ठके दोनों पुत्रोंको स्वामीजीने उपदेश देकर उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें जाम्बको भेज दिया।

यहाँ शिवाजीने रघुनाथ हणमन्तेको व्यंकोजीका हिस्सा लेनेके बारेमें जो काम सौंपा था उसको उन्होंने पूरा किया। शिवाजीका उद्देश्य इसमें कुछ और अधिक धन इकठ्ठा करनेका नहीं था बल्कि कर्नाटकमें अपने राज्यका विस्तार करनेका था। उन्होंने व्यंकोजीको वहीं व्यवस्थापक के रूपमें रखा। उनके संधिपत्रमें ऐसा लिखा गया था कि हम दोनों भाई अब आदिलशाहके अधीन नहीं हैं। व्यंकोजी नाराज ही थे। किन्तु वह कुछ नहीं कर सकते थे क्यों कि उनकी पत्नी दीपाबाइकी सलाहसे यह सुलह हुई थी। व्यंकोजीने सोचा कि संधिपत्रमें थोड़ा फ़र्क करके 'पूने' की कुछ जागीर प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसलिए उन्होंने स्वामीजीकी मध्यस्थताका उपाय ढूँढ़ निकाला। स्वामीजी तैय्यार ही थे। व्यंकोजी उन्हें तंजावर ले गये। स्वामीजीने उपदेश देकर प्रथम व्यंकोजी की वृत्तिमें बदल किया। पहले व्यंकोजी आदिलशाहको अपने स्वार्थके लिए बहुत मानते थे। किन्तु अब स्वामीजीके समझानेपर व्यंकोजीकी आँखें खुल गईं। व्यंकोजी स्वामीजीकी सेवामें लग गये। स्वामीजीने उत्तम कारीगरोंसे राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमानजी की उत्तम मूर्तियाँ बनवायीं। वे मूर्तियाँ सज्जनगडपर अब भी हैं। अब शिवाजीकी इच्छाके अनुसार सभी उद्देश्य सफल हो गये थे। स्वामीजी कर्नाटकसे सं. १७३५ के भादोंमें चाफल लौटे।

प्रतापगडसे पन्हाला के लिए प्रस्थान करने के पूर्व शिवाजी अगहन में चाफलको स्वामीजीका दर्शन करने गये थे विजयादशमी के दिन शिवाजीने स्वामीजीसे सेवाके लिए अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की। स्वामीजीने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि अवकाश मिलते ही धार्मिक कार्योंमें व्यय के लिए उचित

नियुक्ति की जाय। भविष्यमें जिस मात्रामें सप्रदाय, राज्य और वशका विस्तार होगा उसी मात्रामें उसमें वृद्धि हो। इसे सर आँखोंपर रखकर शिवाजीने स्वामीजीको अर्पण-पत्र समर्पित किया।'

उसी वर्ष कल्याणको स्वामीजीने आज्ञा दी कि परडा (तिलगण प्रान्त) से छ मील दूरीपर डोमगावमें जाकर मठ की स्थापना करो। वहाँकी व्यवस्था, सप्रदाय आदिकी देखभाल करनेके लिए वहीं अपना निवास करो। आज्ञा सुनतेही कल्याणको विरहकी यातनाएँ महसूस होने लगीं और कल्याण तुरन्त ही रो पडे। स्वामीजीने कहा कि हरएक व्यक्तिको स्वतत्रता दिये बिना उसकी योग्यता मालूम नहीं होती। इसलिए तुम दुःख न करो। श्री रघुपतिकी यही इच्छा है। स्वामीजीने आशीर्वाद देकर कल्याणको डोमगावके लिए बिदा किया। साथमें दस बारह वर्षके छ शिष्य भी दिये गये। एक वर्षतक दीर्घ परिश्रम करके वहाँ कल्याणने सप्रदायमें वृद्धि की।

शिवाजी महाराजका नित्य क्रम सप्रदायके अनुसार चल रहा था। करीब करीब एक वर्ष बीत गया। सवत् १७३६ के पौष में शिवाजी सज्जनगडपर ठहरे हुए थे। सभाजी भी पन्हालासे स्वामीजीके दर्शनके लिए बुलाये गये। इस मासमें शिवाजीको स्वामीजीने व्यावहारिक और पारमार्थिक उपदेश दिया। व्यावहारिक उपदेशका कुछ अश इस प्रकार है। 'राज्यका प्रबन्ध उत्तम हो, सरदार और नौकर एक दिलसे रहें। देशाधिकारी और सूबेदारको चाहिए कि वे योग्य व्यवहार के साथ सदैव सेवा करें, कोठी, खजाना आदिका प्रबन्ध ठीक हो। ऐसे कामोंमें विश्वासपात्र सेवक हों। कैदखाने, किले, कोट आदि स्थानोंपर शूर और विश्वासपात्र सेवक हों। उन्हें चाहिए कि वे अपने प्राणोंका बलिदान करें बल्कि विश्वास घात न करें। सेनाका अधिकारी शूर, विश्वासपात्र, एक पत्नीव्रती हो, व्यसनाधीन न हो। अपने पुत्रोंके विचार विमर्शसे ही राज्यका प्रबन्ध हो, किन्तु इसके विपरीत न हो। तुम तो सुज्ञ, ही हो फिर भी कहनेका हमारा धर्म है इसलिए हमने कहा।'

आध्यात्मिक उपदेशमें "ईश्वर, सृष्टि और जीवका सम्बन्ध सद्‌गुरुसे पूछ लेना। उसके बताये हुए मार्गपर दृढ श्रद्धा रखकर विवेक के साथ चलना। सद्गुरु या सन्त सगतिसे अनेक सन्देह नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि अनेक सन्तोंके मत व्यवहारमें भिन्न भिन्न होते हैं तथापि अन्तमें अनुभव यही होता है कि ब्रह्म एक ही है। तर्कवितर्कमें

पड़ना खतरनाक है। एक बार गुह्य ज्ञानका आकलन होनेपर अभ्याससे और दृढतासे उसको स्थिर करना। वेद वाक्योंपर विश्वास रखकर उनकी आज्ञाके अनुसार चलनेसे ज्ञानकी प्रतीति होती है और अन्तःकरणमें समाधान होता है। श्रवण, मनन, निदिध्यास और उपासना के द्वारा मन शान्त हो जाता है। इस प्रकार 'मैं और तू 'का भाव नष्ट होकर साधक स्व–स्वरूपमें लीन हो जाता है।" आध्यात्मिक उपदेशके पश्चात् शिवाजी महाराजको समाधि लग गई। समाधि समाप्त होनेके उपरान्त भी अनेक विषयोंपर चर्चा हुई स्वामीजीने शिवाजीका समाधान कर आशीर्वाद दिया। शिवाजी माघ शु. १५ को रायगड चले गये। बातचीत होते समय उद्धव उपस्थित थे। उद्धव समझ गये कि अब ये शिवाजी महाराजके अन्तिम दिन हैं।

शिवाजी संभाजीके दुर्वर्तनके कारण बहुत ही परेशान थे इसलिए उन्होंने संभाजीको पन्हालामें ही रखा था। अब नासिकसे करवीर (कोल्हापूर) तक का प्रदेश पूर्णतया स्वतंत्र हो गया था। छत्रपति के आदर्श शासनसे लोग पूर्ण संतुष्ट थे। हरएक वर्णके लोगोंको अपना अपना कर्तव्य करनेके लिए अवसर प्राप्त हुआ था। इस परिस्थितिका चित्र स्वामीजीने अपने स्वप्नमें पहले ही देखा था। उनका 'आनन्द वन भुवन' नामक स्फुट प्रकरण प्रसिद्ध है जिसमें इसका वर्णन आ जाता है। संक्षेपमें वह इस प्रकार है। "इस आनन्द वन भुवनमें श्रीरामचंद्रजीने हमारा पक्ष लेकर म्लेच्छ–दैत्योंका नाश करनेके लिए बड़ा कोलाहल मचा दिया। सब पापी नष्ट हो गये। अब हिन्दुस्थान बलशाली हो गया। देवोंके देव श्रीरामचन्द्रजी कोपायमान हो गये हैं। रामावतारमें रावणादि दैत्योंका नाश किया गया था। वेही अधर्मका सहाय पाकर उद्भूत हो गये थे किन्तु आनन्द वन भुवनमें (नासिकसे कोल्हापूर तकका प्रदेश) अब अभक्त या दुष्ट नहीं रह गये हैं। श्रीरामचन्द्रजीका धर्म जोर पकड़ने लगा है। सर्वत्र संतोष है। पापी औरंगजेब नष्ट हो गया। म्लेच्छोंका संहार हो गया। जो तीर्थक्षेत्रादि नष्ट किये गये थे उनकी अब मरम्मत होगई है। पापी, नष्ट, चाण्डाल, विश्वासघाती सब नष्ट हो गये। कुछ निर्बल हो गये, । कुछ भाग गये, कुछने देशान्तरण किया है। सब लोग वर्णाश्रम धर्ममें प्रीति करके वेदमार्गपर चलते हैं। अब यह भूमि पूर्णतया निर्मल हो गई है।" स्वामीजीका यह स्वप्न सत्य हो गया।

शिवाजीका स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता था। उसमें बहुत अधिक विकृति आगई और कराल कालने शिवाजीको संवत् १७३७ (शक १६०२ चैत्र शु० १५) में ही ग्रस लिया। यह वार्ता सुनकर सभी दु:खित हो गये। सबको ऐसा लगा कि अपना रक्षक अब चला गया। श्री छत्रपति शिवाजी महाराजके कर्तृत्वपर सभी लोग गर्व करते थे। गरीबसे लेकर अमीरतक सभी शोकमें मग्न हो गये। किन्तु क्या किया जाय! स्वामीजीने कहा 'श्री की इच्छा। जो होनेवाला है वह होता ही है और होगा ही।' आपने उसी दिनसे कमरेसे बाहर आना बन्द कर दिया। वे वहीं ईश्वर चिन्तनमें मग्न होकर अपना काल व्यतीत करने लगे।

शिवाजीके पश्चात् राज्यमें दो पक्ष हो गये। एक राजारामका और दूसरा संभाजीका। शिवाजीके परलोकवास के बाद मोरोपन्त पिंगले, बालाजी आवजी आदि लोगोंने राजारामको राजगद्दीपर स्थापित किया। किन्तु हंबीरराव मोहिते (सेनापति) इन सभी लोगोंको कद करके पन्हालाको संभाजीके पास ले गये। सब सेना भी संभाजीके वशमें हो गई। वहांसे संभाजीने अपने लोगोंके साथ रायगडकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें सज्जनगडपर उन्होंने स्वामीजीका दर्शन किया। आषाढ शु. २ को संभाजी रायगड गये। श्रावण शु. ५ तक गद्दी विषयक झगड़ा समाप्त हुआ। संभाजीने दिवाकरके अनुरोध करनेपर चाफल आदि देवस्थानके लिए पहलेसे जो जागीर नियुक्त की गई थी उसे फिरसे कार्तिक शु. १ से जारी रखनेके लिए अधिकारियोंको आज्ञा देकर महानौमीके खर्चकी व्यवस्था की। इसके उपरान्त दिवाकर सज्जनगड लौट आये। राघो अनन्तके द्वारा संभाजीने स्वामीजीको राज्यारोहणके उपलक्ष्यमें निमंत्रण दिया था किन्तु स्वामीजीने दिवाकर के द्वारा प्रसाद भिजवा दिया। राज्यारोहण का समारोह माघ शु. ७ को मनाया गया।

संवत् १७३८ में संभाजी स्वामीजीका दर्शन करने सज्जनगड गये। उस समय स्वामीजीने संभाजीको उपदेश देकर समझाया। उन्होंने उपदेशके अनुसार आचरण करनेका विश्वास दिलाया। संभाजीने सारे मठका निरीक्षण किया। मठकी इमारतकी मरम्मत करवानेके पश्चात् संभाजी रायगड चले गये। किन्तु इस उपदेशका संभाजीने पालन नहीं किया। वे दुराचारमें

प्रवृत्त हो गये। बालाजी आवजी, विठोजी फर्जंद आदि विश्वास पात्र शूरवीर तथा कर्तव्यनिष्ठ लोगोंको हाथीके पैरोंके नीचे दबवाया। और भी इस प्रकारके भीषण वृत्तान्त सुनकर स्वामीजीका हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। बहुतोंके अनुरोध करनेपर स्वामीजीने संभाजीको सचेत करनेके लिए एक पत्र लिखा। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है। पत्र पद्यमें है।

"सदैव सावधानीसे रहना चाहिए। सोच विचार करके अगले कार्यक्रमोंके सम्बन्धमें निश्चय करना और उग्रताको छोड़कर सौजन्य धारण करना आवश्यक है। अन्तःकरणमें दूसरोंके हितके सम्बन्धमें चिन्ता करनी चाहिए। गत अपराधोंको क्षमा करके मंत्री लोगोंको विश्वासमें लिया जाय। जो कुछ पिताजीने कमाया है उसके लिए झगडा करते रहना ठीक नहीं है। इससे विश्वासघाती लोग अपना स्वार्थ करेंगे। शत्रुको हस्तक्षेप करने का अवसर मिलेगा। सब लोगोंको संगठित करके शत्रुको परास्त करना चाहिए। ऐसा करनेसे दशदिशाओंमें कीर्ति फैल जाएगी। जो कुछ अपने पास है उसकी रक्षा करके और प्रदेश अपने राज्यमें शामिल किया जाय। सर्वत्र महाराष्ट्र (बड़ा राष्ट्र; सनातन धर्मका राज्य) राज्य हो। विशाल और व्यापक बुद्धि करके हिम्मतसे पराक्रम करना चाहिए। ऐसा करनेसे उत्तरोत्तर बडा मान-सम्मान प्राप्त होगा।

शिवरायास आठवावें। जीवित तृणवत् मानावें।
इहलोकीं परलोकीं तरावें। कीर्ति रुपें॥

शिवरायाचे आठवावें रूप। शिवरायाचा आठवावा साक्षेप।
शिवरायाचा आठवावा प्रताप। भूमंडळीं॥

शिवरायाचें कैसें बोलणें। शिवरायाचें कैसें चालणें।
शिवरायाची सलगी देणें। कैसें असे॥

सकळ सुखाचा करावा त्याग। करुनि साधिजे तो योग।
राज्य साधनाची लगबग। कैसी केली॥

त्याहूनि करावें विशेष। तरीच म्हणावें पुरुष
या उपरी आतां विशेष। काय लिहावें॥

. शिवाजीका स्मरण रहे। जीवन (सुखोपभोग) तुच्छ मानना चाहिए। इहलोक-परलोक का साधन करके कीर्ति हो। शिवाजीके रूप, यत्न और दिग्विजय का संमरण रहे। उनका बोलना, उनका आचरण और दूसरोंके साथ मित्रत्व करना कैसा था इसका भी स्मरण रहे। सब सुखोपभोगोंको त्याग देना चाहिए और उनका यह योग साध्य करना चाहिए। उन्होंने राज्य प्राप्त करनेकी कोशिश कैसे की? इतनाही नहीं किन्तु उसकी अपेक्षा कुछ और विशेष पराक्रम करके दिखाना चाहिए तभी पुरुषार्थ सिद्ध होगा। इससे विशेष अधिक हम क्या लिखें!"

पत्रको वन्दना कर 'आज्ञाका पालन करूंगा' इस तरह संभाजीने उत्तर दिया। परन्तु शूरवीर होते हुए भी कुसंगतिके कारण वे इस आज्ञाका पालन न कर सके। इसके बाद स्वामीजी रामनौमीका समारोह मनानेके लिए चाफल गये।

१५

स्वामीजीका निर्याण।

संवत् १७३८ के चैत्र मासमें रामनौमीके समारोहमें सम्मिलित होनेके लिए स्वामीजी सज्जनगडसे चाफल आये। चाफलमें उनकी यह अन्तिम उपस्थिति थी। यहाँ वे हनुमानजयंती तक ठहरे। लौटते समय श्रीराम मंदिरमें श्रीरामचन्द्रजीका बड़े प्रेम और भक्तिके साथ दर्शन किया और प्रार्थना की कि 'इस देहके द्वारा जो कुछ सेवा हो गई वह प्रभुचरणोंमें समर्पित है। इच्छा है कि भविष्यमें जो आपकी (अनन्य भावसे) सेवा करेंगे उनका अभीष्ट पूर्ण हो।' श्रीहनुमानजीका दर्शन करके आप सज्जनगडके लिए प्रस्तुत हुए।

इस बार शिवाजीके द्वारा बनवाये गये नये मंदिरमें स्वामीजीने निवास किया मार्गशीर्ष माससे कल्याण डोमगांवसे स्वामीजीका दर्शन करने आये। इस समय श्री दासबोधका बीसवाँ दशक समाप्त हुआ था। मूल प्रति कल्याणने ही लिखी थी। स्वामीजीने उसको जाँचा। यह प्रति डोमगांवके मठमें है। कल्याणके जानेके

बाद थोडे ही दिनोंमें स्वामीजीने भोजन छोड़ दिया और केवल दुग्धपान पर ही रहने लगे। वे एक कमरेमें एकान्त सेवनके लिए बैठा करते थे। कहीं बाहर न निकलते थे। उद्धव और आक्का उनकी देखमाल करते थे। कुछ दिनोंके बाद बुढापेके कारण स्वामीजीका स्वास्थ्य बिगडने लगा। शिष्योंने स्वामीजीसे जलवायु बदलनेके लिए चाफल जानेका आग्रह किया। परन्तु स्वामीजी बोले 'अब अन्यत्र कहीं जाना नहीं है।' औषधि आदि लेनेसे भी स्वामीजीने इन्कार किया।

भविष्यमें मठ, पूजा आदि की व्यवस्थाके बारेमें आक्का और उद्धवके पूछनेपर स्वामीजीने कहा, 'हमारे शिष्योंमेंसे जो अनन्य भक्तिके साथ श्री की सेवा करेगा उसपर श्री कृपा करेंगे।' फिरसे कुछ दिनोंके बाद इस सम्बन्धमें वार्तालाप होनेपर स्वामीजीने कहा।

> **"आमुची प्रतिज्ञा ऐसी। कांहीं न मागावें शिष्यांसी।**
> **आपणामागें जगदीशासी। भजत जावें॥**
> (भीमस्वामीकृत अंतकाल वर्णन)

'हमारी ऐसी प्रतिज्ञा है कि शिष्योंसे कुछ भी न माँगा जाय; हमारे पश्चात् भी उनको चाहिए कि वे जगदीशकी सेवा और भजन करें।" और एक बार वही प्रश्न पूछनेपर स्वामीजीने अनुज्ञा दी कि श्रेष्ठके दो पुत्रोंके हाथोंमें सब कारोबार सौंपा जाय और उनकी आज्ञासे मठ, पूजा, उत्सव आदिकी व्यवस्था हो। किन्तु जाम्बमें उस समय अशान्ति होनेके कारण उन्हें सज्जनगड लाना असम्भव सा हो गया।

यद्यपि स्वामीजी अस्वस्थ थे तथापि उनकी मुद्रा तेजस्वी दिखाई देती थी। एक बार जब पंढरपूरकर गुसाईंका कीर्तन सुनने के लिए स्वामीजी कमरके बाहर बैठे थे तब उस समय स्वामीजी अस्वस्थ होते हुए भी लोगोंको ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका मुख तेजस्वी, कान्ति दिव्य और आँखोंमें तेज है।

माघ कृ ५ को, पंचधातुकी मूर्तियाँ तंजावरमें कारीगरोंसे बनवायी गई थीं, उन्हें व्यंकोजीने मोम लगवाकर मल्हारराव थेऊरकर और केशव गुसाईंके साथ भेज दीं। जब स्वामीजीने नेत्रोंका मोम निकालकर मूर्तियोंकी ओर देखा तो वे बहुतही प्रसन्न हुए। ध्यान अतीव सुन्दर था। अपने शयनागारमें एक

सिंहासन बनवाकर उन मूर्तियोंकी स्थापना की। उस समय उन्होंने कहा कि जो कोई इनकी पूजा आदि सेवा करेगा उसपर भगवान अवश्य कृपा करेंगे। उद्धव और आक्काको उन्होंने आदेश दिया कि इन मूर्तियों और चापकी मूर्तियोंकी पूजा सांगोपांग करते हुए उपासना मार्ग को बढाओ। माघ व ६ को स्वामीजीने सूचित किया कि अब दो ही तीन दिनोंमें श्री रघुपतिके पास पहुँचनेका समय नजदीक आया हुआ दिखाई देता है, इसलिए लगातार भजन आरम्भ हो। आधे श्लोककी समस्यापूर्ति उद्धवने तुरन्त की कि अब नवमीका दिन सदैव ध्यानमें रखा जाय और तेजीसे कार्यसिद्धि करना प्रारम्भ हो। श्लोक इस प्रकार है।

" रविकुल तिलकाचा वेळ सन्नीध आला,
तदुपरि भजनानें पाहिजे साग केला।
अनुदिनिं नवमी हे मानसीं आठवावी,
बहुत लगबगीनें कार्यसिद्धि करावी॥"

इस समस्या पूर्तिपर स्वामीजी बहुतही प्रसन्न हुए और उद्धवकी खूब सराहना की। नौमीतक रामनामका घोष लगातार चल रहा था।

माघ व ८ को दोपहरमें स्वामीजीने दो वाक्य कहे। 'देवताओंका द्रोह करनेवालोंका नाश होनेवाला है' और समुद्रके पास रहनेवालोंका भी नाश होनेवाला है। (पहला वाक्य म्लेच्छों के और दूसरा पुर्तगालियोंके सम्बन्धमें कहा गया है ऐसा अनुमान लगाया जाता है।)

माघ व ९ को स्वामीजीका दर्शन करनेके लिए भक्त लोगोंका ताँता लग रहा था। दोपहरको स्वामीजीने उन लोगोंको दर्शन दिया। लोगोंने उनके सामने शक्कर और किशमिश रख दिया और उसको स्वीकार करनेके लिए अनुरोध किया। लोगोंने कहा 'नौ दिन बीते, आपके पेटमें न तो अन्न और न जल ही गया इसलिए हमारे इस उपहारको स्वीकार कीजिए।' स्वामीजीने उपहारको स्वीकार कर शक्करके साथ थोडा पानी पी लिया। लोग बाहर चले गये। केवल उद्धव और आक्का पासमें थे। अधिक अस्वस्थ होनेके कारण स्वामीजीने सबको दूर रहनेके लिए कहा। थोडी देरके बाद उद्धव और आक्काको चिन्ताग्रस्त देखकर स्वामीजीने इस प्रकार आश्वासन दिया कि

'यद्यपि मैं इस जगत्में देह धारण कर नहीं रहूँगा, तथापि मेरी आत्माका अस्तित्व रहेगा ही। अब तुम्हें इतना ही करना है कि "मेरे 'दासबोध और आत्माराम' इन दो ग्रन्थोंके अनुसार आचरण करना जिससे तुम सायुज्य मुक्ति पाओगे। देह बुद्धिको छोड़ देना, सदाचरणसे रहना, सदैव स्व स्वरूपका अनुसन्धान कर श्री रामचन्द्रजीका अहर्निश ध्यान करना।"

तत्पश्चात् स्वामीजी पलंगके नीचे उतरकर उत्तराभिमुख पादुका लिए हुए बैठे। मूर्तियोंकी ओर एकाग्र चित्तसे ध्यान लगाया। अकस्मात् उन्होंने तीन बार रामनाम का उच्च स्वरसे घोर किया। उसी क्षण स्वामीजीके मुखसे एक दिव्य तेज बाहर निकला और मूर्तियोंके मुखमें विलीन हो गया। यह दिन शनिवार माघ कृष्ण ९ शक १६०३ का था। (संवत् १७३८)

स्वामीजीके परलोकवासी होनेपर सभी ओर सूनासा दिखाई देने लगा। तीन दिनोंके बाद भीमस्वामी तंजावरसे आये। कहा जाता है कि स्वामीजीका दर्शन न हो सका, इसलिए उन्होंने स्वामीजीके दर्शनके लिए तपस्या आरम्भ की। थोड़े समयके उपरान्त उन्हें समाधिमेंसे प्रकाश दिखाई देने लगा। कल्याण भी दुर्भाग्य-वश इस समय उपस्थित नहीं थे। वार्ता सुनतेही संभाजीको दुःख हुआ और तुरन्त उन्होंने स्वामीजीके उत्तरकार्यके लिए विपुल द्रव्य देकर रामचन्द्रपन्त अमात्यको सज्जनगडपर भेज दिया! दिवाकर गुसाईं समारोह के कारण रायगड गये थे। वे भी तुरन्त वापस लौटे। मठकी उत्तर दिशामें सुरक्षित गढ़ेमें स्वामीजीके शवका विधियुक्त अग्निसंस्कार किया गया। शिवाजी इस गड्ढेको भरनाचाहते थे किन्तु स्वामीजीने उस समय कहा था कि 'उसे रहने दीजिए, भविष्यमें वह काममें आवेगा।' उद्धव गुसाईंने अन्त्येष्टि सत्कार किया। अस्थिसमूह चाफलके वृन्दावनमें तैंतीस वर्षतक सुरक्षित रखा गया था जो बादमें संयोगवश कल्याण स्वामीके अस्थिसमूहके साथ गंगाजीमें केशव स्वामीके द्वारा छोडा गया।

संभाजीने स्वामीजीकी समाधिपर दो मासमें ही एक मंदिर बनवाया। प्रतिवर्ष खर्चके लिए उचित नियुक्ति कर दी गई। संभाजीने भिकाजी बाबा गुसाईंको स्वामीजीका जीवन चरित्र लिखनेके लिए आज्ञा दी।

इस प्रकार ठोसर कुलोत्पन्न सूर्याजीपन्तके पुत्र श्री समर्थ रामदास; माता, पिता बन्धु तथा आबालवृद्धोंके प्राण नारायण;

युवकोंके प्यारे, चतुर और बुद्धिमान तथा आदर्श साथी; सद्-
गुणोंकी प्रतिमूर्ति, अनन्य भक्त; भगवत्प्राप्ति और लोककल्याणके
लिए ठीक समयपर सावधान होकर अपने संसारका होम कर
देनेवाले एक संयमशील युवक; भगवानके प्रीतिभाजन; मुवक
समान महान् समर्थ तपस्वी, सिद्ध पुरुष; घोर कष्टों तथा
संकटोंका सामना करते हुए भारतवर्षकी सच्ची तीर्थयात्रा करने-
वाले यात्री; स्वधर्मजागृतिके लिए शिष्योंके समुदाय बनाकर मठ
स्थापित करके धनुर्धारी भगवान श्रीरामचन्द्रजी और वीरसेवक
हनुमानजीकी उपासनाको बढ़ानेवाले एक समर्थ, रामदास; अती-
तके इतिहासको ध्यानमें रखकर वर्तमान स्थितिका सूक्ष्मतया
परिचय करा देनेवाले एक नेतृत्वशील साधु; फैले हुए आंतकको
देख पिघलनेवाले सहृदय; श्री छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे
आदर्श राजाको उपदेश देकर अपने राष्ट्रका 'आनन्द वन भुवन'
बनवानेमें प्रोत्साहन देनेवाले एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले सद्गुरु;
समस्त जातिके लोगोंके कल्याणेच्छु; दुष्टों तथा समाजके कण्टकों-
के महान शत्रु; अपनी आकर्षक तथा अमृतमय वाणीसे जनसमूहों
को एकत्र करके जागृत करनेवाले आचरणशील और निःस्पृह
ब्रह्मचारी; अपने मराठी ग्रन्थोंके द्वारा वितण्डावादमें न पड़कर
ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याणके लिए ज्वलन्त वैदिक तत्वज्ञान
का प्रसार करनेवाले सन्त पंचक के अन्तिम सन्त आजसे दो सौ
उन हत्तर वर्ष पूर्व हमसे सदाके लिए वियुक्त हो गये!!!

१६

उपसंहार

अकिंचन वरेण्योऽपि समर्थ पदवीं गतः।
दासोऽपि यः किल स्वामी स साधुः कोऽपि राजते ॥
(सुश्लोक लाघव ३३२).

अर्थात् अत्यन्त निर्धन होते हुए भी समर्थ की योग्यता प्राप्त करनेवाला, दास होते हुए भी जगत् का स्वामी बननेवाला (इस संसारमें) ऐसा कोई साधु (रामदासजी) विराजमान है!

सुश्लोक लाघवकार विठोबा अण्णा दप्तरदारजी की उपर्युक्त उक्ति कितनी सार्थक है? निर्धन होकर भी ऐश्वर्यवान और दास होकर भी स्वामी या प्रभु, ऐसा साधु शायदही मिलता है। श्री समर्थ रामदास स्वामी की योग्यता बताते हुए यह कहा गया है। सच है कि स्वामीजी पहलेसे ही धनसे दूर थे। नहीं, इससे सर्वदा दूर रहनेके लिए विवाह मंडपसे वे भाग गये थे। साधुका धन केवल परमात्मा ही है। विषयोंसे निवृत्त होनेसे ही उसको यह धन प्राप्त होता है। ज्ञानेश्वरादि या तुलसीदासादि संतोंकी सम्पत्ति परमात्मा ही है। स्वामीजी कहते हैं—

दासांची संपत्ति राम सीतापति। जिवाचा सांगाती राम एक॥ परमात्मा का जो दास या सेवक है उसकी संपत्ति या धन श्रीराम ही हैं। इसीमें ही सन्तोंकी त्याग की भावना निहित है। श्री रामचन्द्रजी के सिवा सबका त्याग, यही वह भावना है। त्यागसे तपस्या सिद्ध होती है और तपस्यासे वह ज्ञान अर्थात् परमात्मा वशमें हो जाता है। ज्ञानी पुरुषोंके कर्तव्योंमें लोकसंग्रह करना ही एक प्रधान कर्तव्य रहता है। उनकी बुद्धि विशाल और व्यापक होती है। उनके लिए स्वयं अपना कुछ कर्तव्य नहीं रहता। वे अपने बरतावसे लोगोंको सन्मार्गकी शिक्षा देते हैं और उन्हें उन्नतिके मार्गमें लगा देते हैं। संसारका कल्याण करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है।

स्वामीजीकी जीवनीका सिंहावलोकन करते हुए यही प्रतीत होता है कि उन्होंने उस समयकी जटिल परिस्थितिमें आत्मकल्याण करते हुए 'पद्म-पत्रमिवांभसा' निःसंग रहकर लोकसंग्रह, लोकजागृति और लोककल्याण किया। यह घटना सन्तोंके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण है। हमें स्वामीजीमें कई असामान्य गुण मिलते हैं। लोकसंग्राहकत्व, धैर्य, चपलता, बुद्धिमत्ता, तेजस्विता, आकर्षण, अनन्य भक्ति, युक्ति तथा शक्ति आदि गुण विशेष रूपमें दिखाई देते हैं। बचपनमें स्वामीजी पढ़ने लिखनेमें तेज बुद्धिके थे तथा उनकी शारीरिक शक्ति भी दूसरे लड़कोंके लिए आदर्श थी। अनुग्रहके समयकी उनकी अनन्य भक्ति और अनुग्रह प्राप्त करनेकी उत्सुकता भविष्यमें स्वामीजीके लिए अत्यन्त उपकारक हुई। भक्तिका जो बीज उस समय बोया गया था उसका आगे चलकर एक मधुर फल देनेवाला वृक्ष तैय्यार हुआ जिसके सहारे कितने ही जीवोंकी इस संसारताप से मुक्ति हुई।

भगवानकी प्राप्ति करनेके लिए जिस प्रकार ध्रुवने तपस्या की थी उसी प्रकारकी तपस्या स्वामीजीने लगातार बारह वर्षतक की। विवाहके समय तीव्र वैराग्य प्राप्त होना, वहाँसे ईश्वर प्राप्तिके लिए सोच समझकर भाग जाना और यात्रामें कष्टोंको सहन करना, ये सभी घटनाएँ असामान्य धैर्यकी परिचायक हैं। उद्देश्य एकही था और वह था भगवत्प्राप्ति। इतनी छोटी आयुमें इतना कड़ा तप करना, नियमपूर्वक विधिविधान सहित आचारोंका पालन करना, ब्रह्मकर्म आदि नित्यकर्मोंको समाप्तकर स्वाध्याय करना, सत्संगतिका लाभ उठाना, कोई सामान्य बात नहीं! इसी तपस्याके फलस्वरूप वे एक सिद्ध पुरुष हो गये। स्वामीजीमें एक अलौकिक दैवी तेज की उत्पत्ति हुई जिससे जनसमाजमें उनकी ख्याति हुई। इतना होते हुए भी स्वामीजी जनसमूहके प्रलोभनसे अलिप्त ही रहे। यही उनकी विशेषता है। उद्धव शिष्यके प्रति उनका प्रेम सराहनीय है। यहाँसे उनका (शिष्य और मठका) प्रपंच आरम्भ होता है।

तीर्थयात्रामें स्वामीजीने जो दृश्य देखे उनका उन्होंने स्वयं ही अपनी कवितामें वर्णन किया है जो अतीव करुणाजनक है। स्वामीजीका हृदय पिघल उठा और पीड़ितोंका उद्धार करनेकी चिन्ता उनको अहर्निश सताने लगी।

तपस्या, तीर्थाटनके फलस्वरूप उनकी बुद्धि और ही व्यापक और विशाल हो गई थी। भिक्षाके या अन्य यात्रियोंकी संगतिके मिष उन्हें संसारकी हालत प्रत्यक्षतया देखनेको मिली। वे श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें तो सदैव मग्न रहे। उन्हें विश्वास हो गया कि भगवानकी कृपासे इन पीड़ित जनोंका उद्धार अवश्य होगा। इसलिए उन्होंने जगह जगह शिष्योंके समूह बनाकर मठोंकी स्थापना की और उपासनाका क्षेत्र और बढा दिया। तीर्थयात्राके बीच ऐसे कई संकट आये होंगे कि जिनका मुकाबला करना बहुत कठिन हो गया होगा। हम इनकी कवितासे यह अनुमान कर सकते है कि मार्गमें इन्हें तीर्थयात्राके द्वारा अनेक प्रकारके लोगोंकी संगतिका भरपूर अनुभव मिला होगा। इन्हें ढोंगबाजीके प्रति अत्यन्त चिढ़ थी और ये किसी भी बातमें अन्ध विश्वास नहीं करते थे। ऐसे कठिन कालमें भी इनका चरित्र बहुतही उज्वल था। स्नान, संध्या, नमस्कार, भिक्षा, भजन, स्वाध्याय, लेखन आदि कार्यक्रम सतत् चल रहा था। इनके जीवन--चरित्रसे ऐसा प्रतीत होता है कि वर्णाश्रम धर्मके अनुसार इनका आचरण था। शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, सरलता (आर्जव), ज्ञान अर्थात् अध्यात्म ज्ञान, विज्ञान अर्थात् विविध ज्ञान और आस्तिक्य बुद्धि ये ब्राह्मणोंके स्वाभाविक गुण उनमें उत्कटताके साथ वास करते थे।

स्वामीजी अन्य जाति के लोगोंको भी उनके अधिकारानुसार उपदेश देते थे। वे जो बोलते थे वही करके दिखाते थे। 'आधीं केलें मग सांगितलें' यह उनका बाना था। इन्होंने पीड़ितोंके उद्धारके लिए तीर्थयात्राके बाद एक अच्छा प्रदेश चुन लिया कि जिसमें कुछ ठोस कार्य हो सके। श्रीरामचन्द्रजी और श्रीहनुमानजीकी उपासना के द्वारा लोगोंमें संगठन हुआ। हनुमानजी मूर्तिमंत शक्तियुक्तिके देवता और श्रीरामचन्द्रजी तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा। लोगोंको इसके अतिरिक्त क्या चाहिए था? इनके अनेक शिष्य बन गये जिनमें बड़े बड़े अधिकारी भी थे। धीरे धीरे स्वामीजीके आचरण, निःस्पृहता, कार्य करनेकी युक्ति, उमंग, अनन्य भक्ति, स्वधर्म तथा स्वराष्ट्राभिमान आदि गुणोंकी ख्याति हो गई। धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजी और हनुमानजी की जयंती आदि उत्सवोंमें

कीर्तन और भजनके द्वारा जब स्वामीजी अपनी अमोघ, ओजस्वी तथा प्रासादिक वाणीसे लोगोंको उपदेश देते थे तब लोग उनके उपदेशके अनुसार आचरण करनेके लिए उद्यत हो जाते थे। कभी कभी लडकोंके साथ खेलनेमें दिलचस्पी लेते थे। शिवाजी भी उनकी ख्याति सुनकर शिष्य हो गये। शिवाजीकी अपनी एक विशेष योग्यता थी। शूरता, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता, उदारता, प्रभुता आदि क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्मोंके अनुसार उनका आचरण था। श्री छत्रपति शिवाजी महाराज संक्षेपमें तुलसीके राजा राम के आदर्श थे। हमारा यह कहना नहीं कि देशका शासक राजा ही हो। किन्तु जिनके हाथोंमें देशका शासन है उन्हें चाहिए कि वे राजा राम के समान धर्मप्रतिपालक और आचरणशील हो। शिवाजी स्वामीजीके एकनिष्ठ शिष्य थे। दोनोंही अपने अपने स्थानोंमें सुयोग्य होनेके कारण एक दूसरेको तुरन्त ही समझ सकते थे। कभी कभी उनके उपदेशके फलस्वरूप राज्यके गठनमें सहायता मिलती थी। महाराष्ट्र एक आनन्देवन भुवन हो गया। स्वामीजीसे संगठन और लोकजागृतिके रूपमें अप्रत्यक्षतया शिवाजीको सहायता मिलती थी और स्वामीजीको स्वराज्य के कारण अप्रत्यक्षतया धर्मस्थापना या रामोपासना का कार्य निश्चित रूपसे करनेमें शिवाजीसे सहायता मिलती थी। हमने इस कालको 'स्वर्णयुग' ही कहा है इसलिए कि ऐसा समय इस कलिकालमें शायद ही आता है।

यद्यपि स्वामीजी शिवाजीको आशीर्वाद या उपदेशके रूपमें अपनी सलाह देते थे तथापि वे प्रत्यक्षतया राजकाजमें अपना हाथ नहीं बँटाते थे। बल्कि वे उससे अलिप्त ही रहे। जीवनमें स्वामीजीका मुख्य ध्येय यही रहा। "मुख्य हरिकथा निरूपण। दुसरें तें राजकारण। तिसरें तें सावधपण। सर्व विषईं॥ चवथा अत्यंत साक्षेप।" यह उनकी चतुसूत्री थी जिसके अन्तर्गत संसारके सभी कार्य समाविष्ट थे। संसारसे ऊपर उठनेके लिए 'मुख्य हरिकथा निरूपण' था जिसका अन्तिम लक्ष्य केवल भगवत् प्राप्ति था। स्वामीजीने अपनी कवितामें इस प्रधान लक्ष्यका बारबार उल्लेख *किया है। साथ ही साथ वे चाहते थे कि मनुष्य, चाहे वह राजा हो या रंक* अपना प्रपंच ऐसी युक्ति और बुद्धिके साथ और सुव्यवस्थित करे (जिसे वे

राजकारणके नामसे सम्बोधित करते थे) कि अन्तमें उसको स्वतंत्रताकी भावना और समाधान मिले और उसका जन्म सार्थक हो। कामक्रोधादि षड्रिपु और इन्द्रियोंके विषयोंके सम्बन्धमें सावधानीकी आवश्यकता है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब वह उसकी सिद्धिके लिए कष्ट करता है। आलस्यको छोड़ सदैव यत्नशील रहनेपर ही सफलता प्राप्त होती है।

इसी चतुःसूत्रीमें लोकसंग्रह, लोकजागृति, लोककल्याण और आत्मकल्याण निहित है। स्वामीजीकी अनन्य भक्ति देखिये, स्वामीजीका प्रपंचकारण या राजकारण देखिये, और उनका अविरत यत्न देखिये ! स्वामीजीका राजकारण प्रपंचका एक अंगमात्र था। मठ, महंत और शिष्य उनका प्रपंच था। भीम स्वामीके पत्रका उत्तर देते हुए स्वामीजी लिखते हैं 'प्रवृत्तीसि पाहिजे राजकारण निवृत्तीस पाहिजे विवरण। जेथें अखण्ड श्रवण मनन। धन्य तो काळ ॥ प्रवृत्ति या प्रपंचमें राजकारण का सम्बन्ध आता है। (यहाँ राजकारण व्यापक अर्थमें है, संकुचित अर्थमें नहीं।) निवृत्तिमें अखण्ड श्रवण, मनन और निरूपणकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार जो काल व्यतीत किया जाता है वही काल-सार्थक है।" स्वामीजीका दृढ़ विश्वास था कि राजकारण अर्थात् जिसका परिणाम स्वराज्य है, बिना उसके स्वधर्म नहीं टिकता और बिना स्वधर्मके स्वराज्य नहीं टिकता।

स्वामीजीने देखा कि केवल भक्तिमार्गके द्वारा स्थायी लोककल्याण या देशकल्याण होना असम्भव है वह राजकारणके सिवा स्थिर नही हो सकता। यहाँ भक्तिमार्गकी उपेक्षा नहीं है। सृष्टिरचना करनेमें परमात्माका उद्देश्य यही दिखाई देता है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका आचरण पर्याप्त मात्रामें साथ ही साथ हो। स्वामीजी लिखते है :—

"प्रपंचीं जाणे राजकारण। परमार्थीं साकल्य विवरण।
सर्वांमध्यें उत्तम गुण। त्याचा भोक्ता ॥ (दा. १९-४-१७)
जितुके कांहीं उत्तम गुण। तें समर्थाचें लक्षण।
अवगुण ते करंट लक्षण। सहजचि जालें ॥ (दा. १९-४-३१)
उत्कट भव्य तेंचि घ्यावें। मळमळीत अवघेंचि टाकावें।
निःस्पृहपणें विख्यात व्हावें। भूमंडळीं। (दा. १९-६-१५)

वह महापुरुष जो प्रपंच अर्थात् सांसारिक कार्योंमें अच्छी तरह राजकारण (युक्ति या चातुर्य) जानता है। वैसेही परमार्थमें भली प्रकार विवेचन करना जानता है। वह सर्वोपरि गुणोंका ग्राहक या अनुभव करनेवाला होता है। जितने भी उत्तम गुण है वे समर्थके लक्षण हैं और अवगुण स्वाभाविकतया बुरा लक्षण है। उत्कृष्ट और भव्य या विशाल का ही ग्रहण किया जाय। सभी नीरस छोड़ दिया जाय। इस प्रकार निःस्पृहतासे इस अखिल विश्वमें प्रसिद्ध होना चाहिए।"

अतः इस संसारमें उत्तम गुणोंका चयन और उनके आचरणके द्वारा भगवद्भजनमें लीन होने से ही जन्मकी सार्थकता होती है। ऐसा ही पुरुष अन्तमें समर्थ होता है। स्वामीजी की कविता उनके जीवनका एक महान कार्य है जिसके रूपमें वे अमर हो गये हैं। 'दासबोध' तो आध्यात्मिक और सामाजिक बातोंका हृदय है। अन्य स्फुट कविता—रामायण, चौदह शतक ओवी, स्फुट अभंग, करुणाष्टक, षड्रिपु, पंचीकरण, चतुर्थमान, मानपंचक, पंचमान, परचक्रनिरूपण, अस्मानी सुलतानी, अध्यात्मसार, आनंदवन भुवन, आत्माराम, अतर्भाव, सप्तसमासी, पंचसमासी आदि बहुत है।

स्वामीजीके ग्रन्थोंका अवलोकन करते हुए यही प्रतीत होता है कि धार्मिक, सामाजिक और राजनतिक विषयोंमें उनकी विचारधारा समाजके सभी स्तरोंके लिए निःसन्देह प्रगतिशील थी। यही विचारधारा महाराष्ट्र के लिए उस समय उपकारक हुई। स्वामीजीने जिन तत्त्वोंका समय समयपर प्रतिपादन करके हमें उपकृत किया है वह प्रतिपादन भारतवर्षके लिए ही नहीं वरन् अखिल विश्वके लिए अनुकरणीय होगा इसमें सन्देह नहीं।

एवंच श्री समर्थ रामदास स्वामीजी के व्यक्तित्व की अपनी अलग विशेषता इसमें है कि उन्हें जिस जिस व्यक्तिमें जो जो उत्तम गुण दिखाई पड़ा उसको लेकर भगवत्कृपाके बलसे उन्होंने समाजको स्वधर्मनिष्ठ बनाकर सगठित किया और चन्द समयमें अर्थात् पचीस वर्षके कालमें भारत वर्ष के एक हिस्सेका अर्थात् महाराष्ट्रका मस्तक ऊँचा उठाया।

श्रीराम।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी 'मध्यमा' तथा 'उत्तमा' परीक्षाओंमें मराठी के लिए नियुक्त।

श्री समर्थ रामदास स्वामी कृत

'मनाचे श्लोक' का हिन्दी अनुवाद (गद्य)। (मू. १। रु.)

अनु दिवाकर जोगलेकर, 'साहित्यरत्न'

(चित्रकार—ना. भा जोगलेकर)

समर्थ बोलते थे और कल्याण लिखते थे। (म श्लो भूमिका पृ १९)

मनाची शतें ऐकतां दोष जाती। मतीमंद ते साधना योग्य होती।
चढे ज्ञान वैराग्य सामर्थ्य अंगीं। म्हणे दास विश्वासतां मुक्ति भोगी॥
(म श्लो. २०५ पृ १४२)

काव्य खण्ड

समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे।
असा सर्व भूमंडळीं कोण आहे।
जयाची लिला वर्णिती लोक तीन्ही।
नुपेक्षी कदा रामदासाभिमानी॥

(म. श्लो. ३० पृ. २१)

काव्य दर्शन

स्वामीजीकी रचनाओंको देखनेके पूर्व हम काव्यके लक्षण, स्वरूप, जीवनसे उसका सम्बन्ध, पक्ष आदिके सम्बन्धमें थोडा दिग्दर्शन करेंगे।

भारतवर्षकी यही विशेषता है कि वेदोंसे लेकर आजतक का उसका काव्य भावुकता प्रधान ही रहा है। भावोंके कारण हृदयमें
काव्यकी परिभाषा। रसकी सृष्टि होती है, जिसका परिणाम अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है और व्यक्ति परमात्माका अंश है। जब व्यक्तिमें आनन्दकी मात्रा बढ जाती है तब वह आनन्द एक व्यक्तिकी संकुचित सीमाओंमें बन्द न रहकर सर्व साधारणके अनुभवकी वस्तु बनना चाहता है। जब मनुष्यके हृदयमें भाव अत्यन्त प्रबल हो जाते हैं और वे रसोत्पादक भाषा या शब्दोंके द्वारा निकल पडते हैं तब उसीको ही काव्य कहा जाता है।

काव्यके दो स्वरूप माने गये हैं। एक अनुकृत और दूसरा प्रगीत। अनुकृत काव्यमें भावोंकी व्यंजना होती है। पर कवि वास्त
काव्यका स्वरूप। विकताका आधार नहीं छोडता। जीवनके अनेक मार्मिक स्थलोंकी वास्तविक सहानुभूति हृदयमें जगती है। इसमें वस्तु व्यापारका सच्चा चित्रण रहता है। प्रगीत काव्यमें वैय्यक्तिकता, भावात्मकता और आत्मनिवदन विशेष रूपमे रहता है। इसका स्वरूप अधिकतर मुक्तक पद्यमें पाया जाता है।

काव्यका सम्बन्ध जीवनकी अनेकरूपताके साथ है। अनेक रूपात्मक जगत् के समान काव्य भी अनेक भावात्मक है।
काव्यका सम्बन्ध। प्रेम, दया, अभिलाषा, घृणा, द्वेष, क्रोध आदि अनेक वृत्तियोंका परस्पर सामजस्य काव्यकी चरम सीमा है। जगत् या प्रकृतिके नाना रूपोंके साथ कविके हृदय का पूरा संयोग पाया जाता है। उस प्रेमकी अनुभूति के उन्बोधनमें रागात्मिका प्रकृतिका अविष्कार होता है और मनुष्य के कल्याण मार्गका प्रसार दिखाई देता है। लोकरंजन और लोकमंगल की कसौटीपर ही काव्य कसा जाता है। ऐसे ही काव्यमें जीवनके सत्य का अनुभव किया जाता है और वही अमर कृति होती है।

काव्यके पक्ष।

सक्षेपमें 'रसात्मक वाक्यम्' ही काव्य है। रसोत्पादक और प्रभावोत्पादक वाक्यों या शब्दोंके द्वारा हृदयके भावोंकी अभिव्यक्ति करना एक कला है। काव्यके दो पक्ष हैं। (१) भावपक्ष (२) कलापक्ष। भावपक्षमें भावों, विचारों, आकाक्षाओं तथा कल्पनाओंकी अभिव्यक्ति की जाती है। इसमें काव्यके सभी वर्ण्य विषय आ जाते हैं। कलापक्षमें सौन्दर्यज्ञानके सहारे अभिव्यक्तिको सुन्दरतम और शृखलाबद्ध बनाकर अद्भुत आकर्षण पैदा किया जाता है। इसमें वर्णन शैलीके सभी अग सम्मिलित हैं। यह काम भाषाके द्वारा होता है। भाषाके आधार शब्द हैं, जो वाक्योंमें पिरोए जाते हैं। भाषा भावोंकी अभिव्यक्तिका साधन है।

रामदास स्वामीजीकी विचारधारा और उनकी काव्यकी परिभाषा।

इस प्रकार काव्य शास्त्रके सम्बन्धमें सक्षिप्त दिग्दर्शन करनेके पश्चात् हमें यह भी देखना होगा कि कवि और काव्यके सम्बन्धमें श्री समर्थ रामदास स्वामीकी विचार धारा क्या है। साधारणतया स्वामीजी कवियोंके चारप्रकार मानते हैं-धीट, पाठ, धीटपाठ और प्रासादिक। धीट कवि मनमें आया हुआ रच डालता है, चाहे वह जन और काव्य की रीतिके अनुसार हो या न हो। पाठ कवि कई ग्रन्थोंके अनुसार रचना करता है। धीटपाठ कविका कवित्व शृगार वीर आदि रसोंसे युक्त किन्तु भक्ति रहित होता है। लेकिन प्रासादिक कविको वैभव, कान्ता, काचन वमनके समान लगते हैं। उसका अन्त करण अहकारादि विकारोंसे रहित और भगवद्भक्तिके प्रेमसे ओतप्रोत होता है। उसका भाषण ही काव्य होता है। उसकी वाणी भगवत् प्रसादसे युक्त होनेके कारण उसे प्रासादिक कवि कहा जाता है। यह उच्च कोटिका भक्त कवि है।

काव्यके सम्बन्धमें आप कहते हैं कि वह शब्दरूपी सुमनोंका हार है। इन सुमनोंकी सुगन्धि अर्थ है। इस सुगन्धि से सन्तरूपी भ्रमर आनन्दित हो जाते हैं। ऐसा हार अन्त करणमें गूँथकर श्री रामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें समर्पित किया जाय। कविको चाहिए कि वह रचना करनेके पूर्व अनुताप या तपके द्वारा भगवानको प्रसन्न कर ले। इससे जो वचन उसके मुखसे निकल पड़ेगा

यही प्रासादिक या उत्तम काव्य है। स्वामीजी उत्तम काव्यके लक्षण इस प्रकार बतलाते हैः—(१) वह श्रोता या पाठकोंकी शङ्काओंको मिटाने वाला हो (२) वह निर्मल, अन्वित, भक्तियुक्त, अर्थबोधक, रमणीय, मधुर, विशाल, प्रतिभापूर्ण, कल्पनाओंसे युक्त और आसान हो। (३) वह गम्भीर छन्दोबद्ध, कौशल युक्त और व्युत्पत्ति सहित हो। (४) वह अनेक प्रकारकी धार्मिक, प्रासंगिक व साहित्यिक तत्त्वचर्चा करनेवाला हो। (५) वह ऐसा भी हो कि जिससे अनुताप हो, ज्ञान हो और वृत्तिका लय भी हो। (६) भक्तिमार्गका *आकलन हो, देह बुद्धिरहित होकर भगवानका साक्षात्कार हो और ब्रह्मकी* प्राप्ति हो। सारांश दृष्टान्तहीनता, उच्छृंखलता, नीरसता, भक्ति वैराग्यसे रहित होना, अरुचिकर होना, आदि दोष काव्यमें न हों।

मराठी साहित्यमें कवियोंके प्रकार।

यद्यपि काव्यकी आजकी विचारधारा और स्वामीजीकी विचारधारामें कुछ पारिभाषिक शब्दोंका अन्तर पाया जाता है तथापि उसका तात्पर्य मिलता जुलता ही है। आधुनिक मराठी साहित्यकार मराठी साहित्यमें कवियोंके दो प्रकार मानते हैं—एक साक्षात्कारी या सन्त कवि और दूसरा कला कवि। प्रथम वर्गमें ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि और दूसरे वर्गमें वामन पंडित, रघुनाथ पंडित आदि कवियोंका समावेश किया जाता है।

रचना

स्वामीजीकी रचना बहुत विस्तृत है।* उसका कालक्रम अबतक निश्चित नहीं हो सका है तथापि साधारण तौरपर इनकी रचनाके तीन काल खण्ड माने जा सकते हैं। (१) तपस्या (२) तीर्थाटन और (३) धर्मस्थापना।

---

* 'सत्कार्योत्तेजक सभा धुळें, (पश्चिम खानदेश) द्वारा प्रकाशित' (१) श्रीमत् दासबोध, (२) श्री रामदासाची कविता, प्रथम खण्ड। (३) श्री रामदासांची कविता द्वितीय खण्ड। (४) श्री मनाचे श्लोक। [प्रस्तुत लेखकका हिन्दी अनुवाद (गद्य) देखिये।] (५) करुणाष्टकें धाव्या सवाया आदि। (६) परचक्र निरूपण, अस्मानी सुलतानी आदि स्फुट रचनाएँ सभाके 'रामदास रामदासी' नामक मासिक पत्रिकामें प्रकाशित हैं। (७) स्वामीजीके अभंग और मराठी, हिन्दी पद आदि स्फुट रचनाएँ विरक्त रूपमें श्री अनन्तदास रामदासी कृत 'समर्थांचा गाथा' नामक ग्रन्थमें पायी जाती हैं।

स्वामीजीकी अधिकांश रचना पाठ्य और गेय मुक्तक के रूपमें है। रामायणके सुन्दर और युद्धकाण्ड (कविता प्र. खं.) खण्ड काव्य माने जाएँगे। मुक्तक अभंग और पद्योंमें भक्ति-प्रेमकी प्रधानता है। प्रगीत की दृष्टिसे इनकी रचनामें भावात्मकता और आत्मनिवेदन प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। स्वामीजी की रचनाओंका परिशीलन करते हुए यह स्पष्टतया प्रतीत होगा कि उनके जीवनकी परिस्थितिका प्रभाव उनकी रचनाओंपर अवश्य पड़ा हुआ है।

स्वामीजीकी कविता अन्तःस्फूर्त है। काव्य कौशल की दृष्टिको ध्यानमें रखकर उन्होंने कविता नहीं की। तपस्या कालकी

तपस्या खण्ड। उनकी रचनामें हृदय के आभ्यंतरिक भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है। 'करुणाष्टक' नामक रचनामें 'तुजवीण रामा मज कंठवेना;' 'तुजविण शिण होतो धाव रे धांव आतां;' 'सर्वोत्तमा कैं मज भेटि देसी,' 'मजवरि करुणेचा राघवा पूर लोटीं;' 'हुर हुर हुर वाटे। अंतरीं बाष्प दाटे' आदि हृदयके उद्गार इसका प्रमाण है। अनन्य भक्तकी अन्तरात्मा अपनी शक्तिको अपना उपास्य श्रीरामचन्द्रजीकी ओर फेंकती है। श्रीरामचन्द्रजी आलम्बनस्वरूप हैं। हृदयके उद्गार यही वह रागात्मिका वृत्ति है, जिसमें हमें इनके काव्यका उद्गम दिखाई देता है' भगवत् प्राप्तिके लिए स्वामीजी की तिलमिलाहट देखिये—

**'अखण्डीत हे सांग सेवा घडावी। न होतां तुझी भेटि कापा पडावी।
दिसंदीस आयुष्य हें व्यर्थ आटे। उदासीन हा काळ कोठें न कंठे॥'**

उनको निश्चय हुआ था कि श्रीरामचन्द्रजीके अतिरिक्त सांसारिक कर्मोंमें सुख कदापि नहीं होगा। जैसे—

> 'विषय जनित सूखें सौख्य होणार नाहीं।
> तुजविण रघुनाथा वोखटें सर्व कांहीं।
> रविकुळटिळका रे हीत माझें करावें।
> दुरित दुरि हरावें सत् स्वरूपीं भरावें॥'

-वैसेही ईश्वरके प्रति भक्तकी सच्ची लगन देखिये—

'तुझें रूपडें लोचनीं म्या पहावें', 'सदा सर्वदा योग तुझा घडावा,'
'चकोरासि चन्द्रोदयीं सूख जैसें। रघूनायका पाहता सूख तैसें।' आदि।

'दिनानाथ हें ब्रीद त्वा साच केलें' 'समर्था तुझें काय उत्तीर्ण व्हावें' आदि छन्दोंमें वे अपनी कृतज्ञताका परिचय दे रहे है। 'बुद्धि दे रघुनायका' में आप अपनेको छोटा बताते है जो दास्य भक्तिका ही द्योतक है।

'करुणाष्टक' रचना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। इसमें अपनी दशाका अनुभूति पूर्ण और भावात्मक निवेदन है। भगवानके प्रति अनन्य भक्ति और तीव्र वैराग्यके कारण इस रचनामें शान्त रस उमड आया है। इसके प्रत्येक छन्दमें ऐसे अनूठे ढगसे भावोंकी व्यंजना हुई है कि वह हृदयको हिलाती है। इस कालखण्डकी अन्य फुटकर रचना भी बहुत है।

तीर्थयात्रामें स्वामीजीने जो दृश्य देखे वे अत्यन्त करुणाजनक थे। इस कालकी रचना करुण रससे पूर्ण है। फसल, पतन,

तीर्थाटन खण्ड। धन आदिका गुण्डोंके द्वारा नाश, अवर्षण, गुलमरी, निर्वासन, पराधीनता, स्त्रियोंका अपहरण आदि बातोंका भावात्मक चित्रण है। 'अस्मानी सुलतानी' में आप लिखते है —

'**बहुसाल कल्पांत लोकांसि आला। महर्गें बहू धोंडि केली जनांला। किति येक मृत्यूसि ते योग्य जाले। किती येक ते देश[1] त्यागूनि गेले॥**'

नाना पथ और नाना मतो के कारण जहाँ तहाँ कलह उत्पन्न हुए थे। निम्नलिखित अभगमें आप लिखते हैं —

'**आतां कोणा शरण जावें। सत्य कोणाचें मानावें। नाना पंथ नाना मतें भूमंडळीं असंख्यातें॥**'

धर्मके प्रति लोगोंकी श्रद्धा नष्ट हुई थी। लोग अधर्ममें प्रवृत्त थे। जैसे—

'**स्वधर्माचा लोप जाहाला। अधर्मीं जन प्रवर्तला। स्वइच्छा गोंधळ घातला। कलीनें सावकाश॥**'

वैसेही 'जन बुडाले बुडाले' (स. गा १३२२) पदमें देशकी हानि, जुल्म-जबर्दस्ती, अन्न और वस्त्र का अभाव आदि बातोंका हृदयद्रावक वर्णन मिलता है।

---

[1] देशातरण

'परचक्र निरूपण' नामक रचनामें इसी भयकर परिस्थितिका उल्लेख मिलता है। इतनी विकट अवस्था हो गई थी कि लोग अपना अपना परिचय देनेमें हिचकते थे। जैसे—

> 'प्राणी मात्र जाले दुःखी। पाहातां कोण्ही नाहीं सुखी।
> कठिण काळें चोळखी। धरीनात कोण्ही॥'

लोग सत्यको असत्य और असत्य को सत्य मानने लगे। यह परिस्थिति स्वामीजी जैसे सहृदय भक्तको ठीक नहीं लगी। लोगोंके अनेक मत मतान्तर देखकर स्वामीजीका हृदय कहने लगा—

'आम्हां नाहीं चाड ते कोणे येकाची। दृढ राघवाची कास धरूं।
(कविता प्र स ८।६ पृ २०६)

हमें किसीकी भी पर्वाह नहीं है। हम श्री रामचन्द्रजीका ही आश्रय करेंगे।' स्वामीजीकी श्रद्धा थी कि ज्ञान और भक्तिमार्ग के द्वारा बहुतोका कल्याण हो सकेगा। लोगोंकी दुरवस्थाके फलस्वरूप स्वामीजीमें लोकमगलकी भावना जाग्रत हुई। सच्चे भक्तके हृदयमें ही यह लोकमगलकी भावना वास करती है। वहाँ नैराश्य के लिए स्थान नहीं होता। स्वामीजी पर भगवत् कृपा हुई थी जिसके आधारपर उन्हें पूर्ण विश्वास हुआ था कि भगवान उन्हें लोगोंका उद्धार करनेमें मदद देंगे। यही सच्चे भक्तहृदयकी मगल कामना, समाधान और आनन्द है?

धर्मस्थापना खण्ड। इसी मंगलाशाको लेकर स्वामीजीने उपासना मार्गके द्वारा धर्मस्थापना करनेका सूत्रपात किया। श्री रामचन्द्रजी का प्रतीक जनताके समक्ष रखा गया। स्वामीजीकी मूल उपासना श्रीरामचन्द्रजीकी थी। अत उनका गुणवर्णन करनेमें स्वामीजीकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। श्री हनुमानजीके द्वारा ही श्री रामचन्द्रजीकी कृपा प्राप्त हुई थी। फलस्वरूप उनकी कविता के वर्ण्य विषय श्रीरामचन्द्रजी ही रहे।

स्वामीजी रामायणके सुन्दर और युद्ध काण्ड पर ही विशेष तूल देते थे, इसलिए कि जनतामें जागरण की भावना पैदा हो। सुन्दर काण्डमें

(श्री रामदासाची कविता प्र. स.) हनुमानजीके पराक्रमका उत्कृष्ट वर्णन पाया जाता है। जैसे:—

'भयासूर तो भीम सिन्धू उडाला।
त्रिकूटाचळाहुनि पैलाड गेला॥' (८ पृ. २)
'कपीवीर तो थोर लाहान होतो।
धरीतां चळें हात मोडूनि जातो॥' (४३ पृ. ५)

'पळाले भयासूर ते दूरि थोवे। कपीवीर लांगूळ घेऊनि धांवे॥'
(८६ पृ. ९)

लंकादाहका वर्णन देखियेः—

"गृहा गोपुरामाजि तो पुछ घाली। त्रिकूटाचळीं आगि नेटें निघाली। विदी हाट बाजार चौवार कुंचे। पळे वोंवळी नागिवा लोक नाचे॥ ८१॥ (पृ. ८)

युद्धकाण्डका प्रारम्भ करते हुए स्वामीजी दृढ विश्वास के साथ श्री रामचन्द्रजी की कथाके श्रेष्ठत्वका परिचय दे रहे हैं।

जेणें फेडिलीं पांग ब्रह्मादिकांचा। बळें तोडिला बंद त्या त्रीदशांचा म्हणोनी कथा थोर या राघवाची। जनीं ऐकतां शांत होते भवाची॥
(११७ पृ. ११)

अपने बलसे सभी देवोंको बन्धन से छुड़ाकर श्री रामचन्द्रजीने ब्रह्मा आदि देवताओंको सतुष्ट किया। इस महान् उपकार के लिए ही रघुनाथजी की कथा श्रेष्ठ है।

जब वानर सेना एक के बाद दूसरे अरण्यको पार करती है तब उसका वर्णन देखियेः—

'कपींचीं पुढें चालती दाट थाटें। वनें चालतां सर्व होतीं सपाटें॥
(१-२८ पृ. १३)

दोनों दलों के बीचके युद्धका वर्णन भी अनूठे ढगसे किया गया है।

इन्द्रजीत–लक्ष्मण और राम–रावण के संवाद वीर रससे पूर्ण हैं। जैसे:— ७।२; ७।७; ९।४४ (यु. का) आदि। कहीं कहीं रौद्र रसकी भी झलक पायी जाती

है। जैसे ९।५१ (यु. कां) इन्द्रजीत की भुजाका सुलोचनाके आङ्गनमें उससे मिलनेके लिए जानेका वर्णन अद्भुत रससे पुष्ट हुआ है। (७-७५ यु. कां.) वैसेही बीभत्सका भी वर्णन यत्र तत्र मिलता है। जैसे-९।६८ आदि। (यु. कां.)

साराश ये दोनों काण्ड पाठकोंके मनमें उत्साह तथा जागृति और श्री रामचन्द्रजीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले हैं। स्वामीजीकी वर्णनशैली अत्यंत उत्साहवर्धक और आकर्षक है। किसी घटनाका चित्र पाठकोंके सामने खड़ा करनेमें आप सिद्धहस्त हैं। युद्धकाण्डमें घोर अरण्यका और सुन्दर काण्डमें लंकादाहका यथातथ्य वर्णन पाया जाता है। श्री रामचन्द्रजीके अयोध्यागमन का वर्णन भी भावात्मक है।

धर्मस्थापना खण्डकी प्रधान और विस्तृत रचना 'दासबोध' है। इस ग्रन्थका आत्मपक्ष जीवनका सन्देश और शरीरपक्ष भावात्मक संवाद है। इस संवाद की उत्साहवर्धक प्रवृत्ति प्रधानतया लोकधर्मकी ओर ही रही है। इसमें लोकमङ्गल की कामना होनेके कारण जीवनके सत्यका अनुभव होता है जिससे यह अमर कृति हो गई है। इसके पढ़ने या सुननेसे पाठक या श्रोताका तादात्म्य हो जाता है।

इसमें भक्तिमार्गका विशदीकरण किया गया है। ज्ञानवैराग्य का लक्षण और अध्यात्म-निरूपण इसके मुख्य विषय हैं। तथापि नरदेहका सार्थक्त्व, संसारका दुःख, ईश्वर, जीव और जगत् का सम्बन्ध, माया और ब्रह्मका निरूपण, ज्ञान-विज्ञान, नवविधा भक्ति, मुख्य देव, सद्गुरु, सच्छिष्य, भजन, मूर्ख, पढतमूर्ख, सदेव और करंट लक्षण, चत्वार जीव, स्वधर्मपालन, निःस्पृहता, चातुर्य, राजनीति, यत्न, प्रारब्ध, आदि जीवन विषयक सभी बातोंका सरल, सुबोध और विस्तृत विवरण इसमें किया गया है। उद्देश्य यह है कि हरएक व्यक्ति उपरिनिर्दिष्ट विषयोंको भली भाँति समझे और उसके अनुसार आचरण करे जिससे वह परमार्थ प्राप्त करनेका अधिकारी हो सके।

'दासबोध' दास अर्थात् रामदासजी, इन के द्वारा शिष्योंको दिया गया बोध अर्थात् उपदेश है। यह गुरुशिष्यका संवाद है। शिष्य प्रश्न पूछते हैं और गुरुजी शङ्काओंका समाधान करते हैं। यह रचना पाठ्य मुक्तक कही जा सकती है। इसके बीस दशक हैं। प्रत्येक दशकके दस समास या अध्याय हैं। अगले

विषयकी ओर संकेत करके एक समासका सम्बन्ध दूसरे समाससे जोडा गया है जिससे इसकी रचना अन्वययुक्त हो गई है। जिस प्रकार भगवद् गीतामें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद विश्वको जीवनका सन्देश देता है उसी ढंगका यह गुरु शिष्य संवाद है।

साक्षात्कारी सन्त कवियोंका उद्देश्य जनताको मुख्यतया परमार्थकी ओर प्रवृत्त करनेका ही रहा है। वे अपने सिद्धान्तों की शिक्षा उपदेश के द्वारा ही देते हैं। स्वामीजी, श्रीज्ञानेश्वर आदि पूर्ववर्ती सन्तोंके समान भक्तिमार्गी ही थे। इनका तत्वज्ञान अद्वैत विचारधारा का ही था, किन्तु स्वामीजीके समय देश-काल परिस्थिति विकट हो गई थी, इसलिए उनको भक्तिमार्ग के साथ व्यवहार और राजनीतिकी शिक्षा देनी पडी। जनताके सामने उत्तम पुरुषका आदर्श रखा गया। उस समय वही एक मात्र उन्नतिका मार्ग था। यद्यपि स्वामीजीके 'दासबोध' में अन्य सन्तोंकी अपेक्षा अध्यात्मके अतिरिक्त समयानुकूल आवश्यक व्यावहारिक और राजनैतिक बातोंका विवेचन अधिक मिलता है तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर यही प्रतीत होगा कि उनकी विचार-धाराका मूल स्रोत आदिसे अन्ततक परमार्थकी ओर ही अग्रसर है। उनके उपदेशका सार इस ग्रन्थके निम्नलिखित ओवियोंमें पाया जाता है।

" संसार म्हणिजे सर्वेच स्वार। नाहीं मरणास उधार।
मापीं लागलें शरीर। घडीनें घडी ॥ ३-९-१ ॥

देह परमार्थी लाविलें। तरीच याचें सार्थक जालें।
नाहीं तरी हें वेर्थचि गेलें। नाना आघातें मृत्युपंथें ॥ १-१०-६१॥

आयुष्य हेचि रत्न पेटी। मार्जी भजनरत्नें गोमटीं।
ईश्वरीं अर्पूनियां लुटी। आनंदाची करावी ॥ ३-१०-२७ ॥

प्रकृती सारिखें चालावें। परी अंतरीं शाश्वत वोळखावें।
सत्य होऊनि वर्तावें। लोकां ऐसें ॥ ११-२-४० ॥

कर्म उपासना आणि ज्ञान। येणें राहे समाधान।
परमार्थाचें साघन। तेंचि ऐकन जावें ॥ ११-३-३० ॥

मुख्य हरिकथा निरूपण। दुसरें तें राजकारण।
तिसरें तें सावधपण। सर्व विषईं ॥ ११-५-४ ॥
चयथा अत्यंत साक्षप। फेडावे नाना आक्षप।
अन्यायें थोर अथवा अल्प। क्षमा करीत जावे ॥ ११-५-५
प्रपंच सांडून परमार्थ कराल। तेणें तुम्ही कष्टी व्हाल।
प्रपंच परमार्थ चालवाल। तरी तुम्हीं विवेकी ॥ १२-१-२ ॥
उत्कट भव्य तेंचि घ्यावें। मळमळींत अवघेंचि टाकावें।
नि:स्पृहपणें विख्यात व्हावें। भूमंडळीं ॥ १९-६-१५ ॥
सामर्थ्य आहे चळवळेचें। जो जो करील तयाचें।
परंतु येथें भगवंताचें। अधिष्ठान पाहिजे ॥ २०-४-२६ ॥

साराश, निष्प्रयत्यागयुक्त उपासना और आचरण करनेसे ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण सब सकता है और ज्ञानस्वरूपी भगवानकी प्राप्ति होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको चाहिए कि वह इस ससारमें अत्यत सावधानीसे और नीति मर्यादाके साथ रहकर स्वधर्म पालनका अविरत यत्न करे और परमात्माका चिन्तन कर आत्महितका साधन करे।

अन्य संवादात्मक और सक्षिप्त रचना "श्री रामदासाची कविता द्वितीय खण्ड"में सकलित है। यह 'लघुकाव्य' कहा जाता है। ये लघुकाव्य ग्यारह हैं —१ पूर्वारम्भ २ जुनाट पुरुष ३ अन्तर्भाव ४ आत्माराम ५ पच समासी ६ सप्त समासी ७ सगुण ध्यान ८ निर्गुण ध्यान ९ मानस पूजा १० जनस्वभाव गोसावी ११ एकवीस समासी।

पूर्वारम्भमें सद्गुरु और ज्ञानके सम्बन्धमें विवेचन है। 'जुनाट पुरुष' में बताया गया है कि अहकार के पूर्णतया नष्ट होनेपर ही समाधान मिलता है। 'अन्तर्भाव'में स्वधर्मानुसार नित्य कर्मोंका आचरण करनेपर चित्तशुद्धि और तत् पश्चात् भगवत् प्राप्तिका मार्ग बताया गया है। 'आत्माराम'में गुह्य ज्ञान के सम्बन्धमें विवरण है। 'पच समासी'में कहा गया है कि वितण्डावादोंको छोड़कर स्व-स्वरूपमें लीन होना ज्ञानका लक्षण है। 'सप्तसमासी'में दीपप्रकाश, मतिप्रकाश, सामर्थ्य-मर्यादा, अनादि ब्रह्म,- मायाका -स्वरूप, सगु निःसग,

निरूपण, मूल संकल्प, इहलोक और परलोककी सफलता ये विषय आते हैं। 'सगुण ध्यान'में श्री रामचन्द्रजीके सगुण मूर्तिका ध्यान, उनका ऐश्वर्य और रामनाम का महत्त्व बताया गया है। 'निर्गुण ध्यान'में सगुण निर्गुणके ऐक्य का विवरण है। 'मानस पूजा'में नैमित्तिक कार्यक्रम बतलाया गया है। 'जनस्वभाव गोसावी'में ढोंगी गुरुके लक्षण दिये गये हैं। 'एकवीस समासी'में प्रपंच-परमार्थ और स्वधर्मकी स्थिति, वैराग्य, ज्ञान आदि बातोंका विवेचन है।

'श्री रामदासांची कविता' (प्रथम खण्ड) में स्फुट रचनाएँ भी बहुत मिलती हैं। 'चौदा शतक ओव्या' (पृ. १३२) नामक रचनामें सौ सौ ओवियोंका एक एक भाग है। प्रत्येक भागके विषय इस प्रकार हैं:-१ वैराग्य २ संसार का दुःख, माया, ब्रह्मका विवरण। ३ ज्ञान। ४ उपदेश। ५ नवविधा भक्ति, चत्वार मुक्ति, पंच प्राण ६ स्वरूपानुसंधान। ७ ब्रह्म निरूपण। ८ सगुण निर्गुण विवेचन। ९ सर्वं ब्रह्म निरूपण। १० सद्गुरुकी सेवा। ११ सांसारिक कार्य करते हुए मोक्ष प्राप्ति। १२ प्रारब्ध-प्रयत्न संवाद। १३ रामचरित्र। १४ भगवान कृष्णकी बालक्रीडा।

'पंचीकर्ण योग' (पृ. ३१७) में निर्गुण स्वरूप, आत्मनिवेदन आदि बातोंका विवेचन है। 'चतुर्थ मान' में (पृ. ३२६) अन्तरात्मा, अनिर्वाच्य ब्रह्म, प्रत्यक्ष ज्ञान, मायातीत निरंजन, आदिका विवरण है। 'मान पंचक' (पृ. ३३४) में रामराज्य की महिमा, रामोपासनाका महत्त्व आदि बातें कही गई हैं। 'पंचमान' (पृ. ३४५) में अन्तरात्मा, सत्संग, गुरु-शिष्य सम्बन्ध और ज्ञान आदिका विवरण है। 'षड्रिपु' (पृ. ३०८) में कामक्रोधादि शत्रुओंका सामना किस प्रकार किया जाय इसका विवेचन है।

'स्फुट ओव्या' (पृ. १९१-३०८) नामक रचनामें चुने हुए अभंग मिलते हैं। इसमें देवताओंका स्तवन, श्री रामचन्द्रजीका गुण-गान, रामनाम की महत्ता, भक्ति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, सम्प्रदायके लक्षण आदि विविध विषयोंका विवरण मिलता है। अभंग भक्ति-प्रेम-रस पूर्ण हैं।

'स्फुट प्रकरणें' नामक रचनामें (पृ. ३५६) यत्न, प्रारब्ध, अनन्य भक्ति, अहंकार, शाश्वत सुख, बुढापा, अच्छा शासक आदि विविध बातोंका स्पष्टीकरण

मिलता है। जैसे, प्रकरण ३६ (पृ. ३९५) में मन्नत उतारनेके समय तुलजा भवानी से स्वामीजी लोक-कल्याण के लिए वरदान माँगते हैं। प्रकरण ३९ (पृ. ३९७) में 'संगीत गायनी विद्या' का महत्त्व बताया गया है। 'आनन्द वन भुवन' नामक ५८ वें प्रकरणमें (पृ. ४२१) बताया गया है कि स्वामीजीने पहले जो 'स्वतंत्र महाराष्ट्र' का स्वप्न देखा था उसके अब प्रत्यक्षतया सफल होनेके कारण स्वामीजी बहुत प्रसन्न हैं। 'अध्यात्मसार' नामक ६७ वें प्रकरणमें (पृ. ४३४) श्री रामवरदायिनी माता के द्वारा श्री रामचन्द्रजीको दिये हुए वरदान के कारण रावण का नाश किस प्रकार हुआ और वही आदिशक्ति अब प्रतापगढमें प्रकट होकर राजाको शक्ति प्रदान कर रही है इसके सम्बन्धमें कथन है। शक्ति-युक्तिकी महत्ता भी बतलाई गई है।

'स्फुट श्लोक' की रचनामें रामोपासना, महन्तोंको चेतावनी, संसारकी निःसारता आदि विषय मिलते हैं। 'लघुरामायण'में (पृ. ४८०) संक्षेपमें रामचरित्र गाया गया है।

श्री अनन्तदास रामदासी कृत 'समर्थांचा गाथा' नामक ग्रन्थमें श्री समर्थ रामदास स्वामीकृत अभंग, स्तोत्र, भूपाली, आरती, भारूड, (कूट प्रश्न, पहेलियाँ, बुझौवल, रूपक आदि) हिन्दी और मराठी पद, प्रासंगिक वातें आदि १७५० संख्यातक स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। हरएक अभंग या पद्यमें एक एक भाव उत्कटतासे व्यक्त हुआ है। स्फुट रचनाओंका काल निश्चित रूपसे नहीं कहा गया है। तीनों कालखण्डोंमें ये रचनाएँ समय समयपर रची गई दिखाई देती हैं। अधिकांश रचनाएँ बहुत आकर्षक, प्रसादयुक्त, स्फूर्तिदायक और उद्बोधक हैं।

'मनाचे श्लोक' नामक रचनामें मनको उपदेश दिया गया है। यह रचना स्वामीजीके अद्वैत तत्त्वज्ञानका निचोड़ है। 'दासबोध' जैसी यह रचना भी उत्कृष्ट, हृदयग्राही, प्रौढ और प्रांजल है। इन श्लोकोंमें चेतना उत्पन्न करनेकी शक्ति है। इसमें संसारकी निःसारता, स्वधर्माचरण का महत्त्व, मुख्य देव, सद्गुरु, सच्छिष्य, ब्रह्मका निरूपण, निःसंग होना आदि वातें संक्षेपमें और अत्यंत निपुणताके साथ बताई गई हैं।

इसके अतिरिक्त इनकी रचनामें प्रकृति वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। जमुना नदीके कूलोंका वर्णन (प्र स. पृ ४९३) और भिन्न भिन्न गुहाओंका वर्णन सुन्दर है। 'दासबोध' के ग्यारहवें दशकके 'चचल नदी निरूपण' नामक सातवें समासमें चचल नदीका रूपक भी सुन्दर रीतिसे बाँधा हुआ मिलता है।

काव्य कलाकी दृष्टिसे स्वामीजीकी रचनाओंका विचार करते हुए हमें यह प्रतीत होता है कि उनकी कवितामें भावो और विचारोंकी पूरी अभिव्यजना हुई है। कलापक्षकी अपेक्षा स्वामीजीमें हृदयपक्षकी ही अधिकता पायी जाती है। वैसे तो वे प्रतिभासम्पन्न और अनेक विषयोंके जानकार थे ही। ऐसा कोई विषय नहीं मिलेगा कि जिसका वर्णन करते समय स्वामीजीने सूक्ष्मता और स्पष्टताके साथ उसकी छानबीन नहीं की। उनकी वाणीमें अधिकतर प्रसाद और ओज गुण पाया जाता है जिससे उनके साहित्यमें शान्त और वीर रसकी सृष्टि हुई है। उनकी कविता रूपी सरिता यह नहीं देखती थी कि बीचमें कहीं अशुद्धियाँ, यतिभग आदि चट्टानें या शिलाखण्ड हैं। उसका प्रवाह अप्रतिहत था। अलकार युक्त भाषा सजानेकी ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। वस्तुत. भावुक कविका ध्यान ऐसी बातोंपर न जाना स्वाभाविक ही है। अपने हृदयके भावोंको प्रकट करके वह जनताके अन्त स्थल पर ही उनका प्रभाव डालनेके लिए प्रयत्नशील होता है। अत: पण्डितों जैसी शास्त्रीय शिक्षा न पानेके कारण स्वामीजोकी रचनामें कहीं कहीं शब्दोंकी तोड मरोड आर खींचातानी मिलती है। तथापि उनकी भाषा हृदयग्राही, प्रभावपूर्ण और सशक्त है। जिस रसको उन्होंने लिया उसका पूरा आवेश उनमें था।

स्वामीजीकी रचनाओंके क्रम विकासको देखते हुए उत्तरोत्तर उनकी रचनाएँ प्रौढ, प्राजल और अनुभूतिपूर्ण होती हुई दिखाई देती हैं। उन्होंने ससारका सूक्ष्म निरीक्षण करके बडा गहरा अनुभव प्राप्त किया था। इसलिए उनकी रचनामें कोरी कल्पनाके लिए स्थान नहीं है। जीवनके मार्मिक और गम्भीर प्रश्नोंको उन्होंने बडी योग्यताके साथ सुलझाया है। किसी विषयको सुलझाते हुए उन्होंने चलती भाषाका प्रयोग किया है जिससे सामान्य व्यक्ति भी उस विषयको आसानीसे समझ सके। स्वामीजी जनता का हृदय जानते थे

और उसके अभावोंकी पूर्ति आचरण और भावपूर्ण उपदेशके द्वारा करते थे। भक्त कवि होनेके कारण उनका लक्ष्य परमार्थ की ओर ही केन्द्रित था। साथ ही साथ लोक-कल्याण की ओर भी। श्री एकनाथजी के समन्वय वाद (प्रपंच परमार्थका) को उन्होंने फिरसे पुष्ट किया और अपनी ओजस्वी वाणीके द्वारा जनताको प्रयत्नशील और आचरणशील बनाया।

कविता चयन

(दासबोध)

संत

मोक्षश्रिया आळंकृत । ऐसे हे संत श्रीमंत ।
जीव दरिद्री असंख्यात । नृपती केले ॥ १ ॥
जे समर्थपणें उदार । जे कां अत्यंत दानशूर ।
तयाचेनि हा ज्ञान विचार । दिधला नै वेंचे ॥ २ ॥
महाराजे चक्रवर्ती । जाले आहेत पुढें होती
परंतु कोणी सायोज्यमुक्ति । देणार नाहीं ॥ ३ ॥
ऐसी संतांची महिमा । बोलिजे तितुकी उणी उपमा ।
जयांचेनि मुख्य परमात्मा । प्रगट होये ॥ ४ ॥ (दा १।५)

कवेश्वर स्तवन

आतां वंदूं कवेश्वर । शब्द सृष्टीचे ईश्वर ।
नौतरी हे परमेश्वर । वेदावतारी ॥ १ ॥
कीं हे सरस्वतीचें निजस्थान । कीं हे नाना कळांचें जीवन ।
नाना शब्दांचें भुवन । येथार्थ होये ॥ २ ॥
कवि मुमुक्षांचे अंजन । कवि साधकांचें साधन ।
कवि सिद्धांचें समाधान । निश्चयात्मक ॥ ३ ॥
कवि स्वधर्माचा आश्रयो । कवि मनाचा मनोजयो ।
कवि धार्मिकाचा विनयो । विनयकर्ते ॥ ४ ॥

---

१ मोक्षरूपी लक्ष्मीसे । २ व्यर्थ नहीं जाता । ३ न्यून । ४ जिसकी वजह । ५ या । ६ पोषण । ७ काजल, जिसके लगानेसे कहा जाता है कि ज़मीनमें गड़े खजाने दिखाई पड़ते हैं ।

कवि वैराग्याचें संरक्षण । कवि भक्तांचें भूषण
नाना स्वधर्म रक्षण । ते हे कवि ॥ ५ ॥
आधीं कवीचा वाग्विलास । तरी मग श्रवणीं तुंबळे रस ।
कवीचेनि मति प्रकाश । कवित्वास होये ॥ ६ ॥
नस्तां कवींचा व्यापार । तरी कैंचा अस्ता जगोद्धार ।
म्हणौनि कवि हे आधार । सकळ सृष्टीसी ॥ ७ ॥
कीं हे विवेक निधीचीं भांडारें । प्रगट जालीं मनुष्याकारें ।
नाना वस्तूचेनि विचारें । कोंदाटले हे ॥ ८ ॥
कीं हे सुखाचीं तारुवें लोटलीं । आक्षे आनंदें उतटलीं ।
विश्वजनास उपेगा आलीं नाना प्रयोगा कारणें ॥ ९ ॥
कीं हा ईश्वराचा पवाड । पाहातां गगनाहूनि वाड ।
ब्रह्मांड रचनेहून जाड । कवि प्रबंद रचना ॥ १० ॥ (दा. १।७)

मूर्ख लक्षण

जन्मला जयांचे उदरीं । तयांसी जो विरोध करी ।
सखी मानिली अंतुरी । तो येक मूर्ख ॥ १ ॥
स्वयें नेणे परोपकार । उपकाराचा अनोपकार ।
करी थोडें बोले फार । तो येक मूर्ख ॥ २ ॥
पुत्र कलैत्र आणि दारा । इतुकाची मानूनियां थारा ।
विसरोन गेला ईश्वरा । तो येक मूर्ख ॥ ३ ॥ (दा. २-१)

पढतमूर्ख लक्षण

मागां सांगितलीं लक्षणें । मूर्खा आंगीं चातुर्य बाणे ।
आतां ऐका शाहाणे । असोनि मूर्ख ॥ १ ॥

१ वाणी विलास । २ आवेशके साथ बटना । ३ न होता तो । ४ ठसाठस भर गये हैं। ५ नौकाएँ। ६ आगई । ७ चिरकाल। ८ उमड़ आई । ९ उपयुक्त हुई । १० कीर्ति । ११ विशाल । १२ बड़ी । १३ पेटमें । १४ स्त्री । १५ पत्नी । १६ आश्रय ।

दोष ठेवी पुढिलांसी । तें चि स्वयें आपणापासीं ।
ऐसें कळेना जयासी । तो येक पढतमूर्ख ॥ २ ॥
नाहीं भक्तीचें साधन । नाहीं वैराग्य ना भजन
क्रियेवीण ब्रह्मज्ञान । बोले तो येक पढतमूर्ख ॥ ३ ॥
परंम मूर्खांमाजी मूर्ख । जो संसारीं मानी सुख
या संसार दु.खा ऐसें दुःख । आणीक नाहीं ॥ ४ ॥ (दा २-१०)

विरक्त लक्षण

विरक्तें धर्म स्थापना करावी । विरक्तें नीति आवलंबावी ।
विरक्तें क्ष्मा सांभाळावी । अत्यादरेंसी ॥ १ ॥
विरक्तें उपाधी करावी । आणी उदासवृत्ती न सडावी ।
दुराशा जडो नेदावी । कोण येकं विषइं ॥ २ ॥
विरक्तें शुद्ध मार्ग सांगावा । विरक्तें संशय छेदावा ।
विरक्तें आपला म्हणावा । विश्वजन ॥ ३ ॥ (दा. २-९)

त्रिविध ताप

देह इंद्रिय आणी प्राण । यांचेनि योगें आपण ।
सुख दु.खें सिणे जाणे । या नांव आध्यात्मिक ॥ १ ॥
सर्व भूतांचे नि संयोगें । सुख दुःख उपजों लागे ।
तेंप होतां मन भंगे । या नाव आदिभूतिक ॥ २ ॥
शुभाशुभ कर्मानें जना । देहांतीं येमयातना ।
स्वर्ग नर्क भोग नाना । या नाव आदिदैविक ॥ ३ ॥
(दा. ३-६, ३-७, ३-८)

---

१ दूसरोंको । २ अत्यंत । ३ आचरण करे । ४ क्षमा । ५ पालन करे । ६ उद्योग । ७ नहीं छोड़े । ८ अंगीकार न करे । ९ निर्मूलन करे । १० थक जाता है । ११ समझ । १२ त्रास । १३ विमनस्क हो जाता है । १४ अनेक ।

संसार

संसार म्हणिजे माहापूर। मार्जी जळचरें अपार।
डेंखुं धावती विखार[1]। काळसर्प ॥ १॥
अहंकार नेंक्रें उडेविलें[2]। नेऊन पातांळीं बुडेविलें[5]।
तथुनियां सोडविलें। न वंचे[6] प्राणी ॥ २॥
वासैना धामिणी[7] पडिली गळां। घालून वेंटाळें[8] वमी[9] गरळा।
जिव्हा लांळी[9] चेळोवेळां। भयानक ॥ ३॥
बहुतेक आंवर्ती[10] पडिले। प्राणी वाहात चि गेले।
जेहीं भगवंतासी बोभाइलें[11]। भावार्थ बळें ॥ ४॥ (दा. ३-१०)

सद्गुरु

जे करामती[12] दाखविती। ते हि गुरु म्हणिजेती।
परंतु सद्गुरु नव्हेती। मोक्ष दाते ॥ १॥
जे यांतीचा[13] जो व्यापार। सिकविती भरावया उदर।
ते हि गुरु परी साचार[14]। सद्गुरु नव्हेती ॥ २॥
फोडूनि शब्दांचें अंतर। वस्तु[15] दाखवी निजसार।
तोचि गुरु माहेर[16]। अनाथांचें ॥ ३॥ (दा. ५-२)

सच्छिष्य

मुख्य सच्छिष्याचें लक्षण। सद्गुरुवचनीं विश्वासपूर्ण।
अनन्यभावें शरण। त्या नाव सच्छिष्य ॥ १॥
शिष्य असावा स्वतंत्र। शिष्य असावा जगमित्र
शिष्य असावा सत्पात्र। सर्व गुणें ॥ २॥ (दा. ५-३)

---

१ रेला। २ काटनेके लिए। ३ विषैले। ४ ग्राहने ग्रस लिया। ५ पातालमें डुबा दिया अर्थात् अध:पतन हुआ। ६ असम्भव है। ७ वासनारूपी धामन। ८ गेंडली डलकर विष वमन करती है। ९ लार टपकती है। १० पानीके भँवरमें। ११ पुकारा। १२ कौशलके काम। १३ जातिका। १४ वास्तवमें। १५ परब्रह्म। १६ नैहर।

शुद्ध ज्ञान

पेक ज्ञानाचें लक्षण । ज्ञान म्हणिजे आत्मज्ञान ।
पाहावें आपणासि आपण । या नाव ज्ञान ॥ १ ॥
मनबुद्धि अगोचर । नें चेले तर्काचा विचार
उंलेख परेंहूनि परें । या नाव ज्ञान ॥ २ ॥
जेथें नाहीं दृश्यभान । जेथें जाणीवें हें अज्ञान ।
विमल शुद्ध स्वरूप ज्ञान । यासि बोलिज ॥ ३ ॥ (दा ५-६)

सगुण भजन

साहेबासि लोटांगणीं जावें । नीचा सारिखें व्हावें ।
आणि देवास न मनावें । हें कोण ज्ञान ॥ १ ॥
हरिहर ब्रह्मादिक । हे जयाचे आज्ञाधारक ।
तूं येक मानवी रंक । भजेसिना तरी काय गेलें ॥ २ ॥
मनीं धरावें तें होतें । विघ्न अवघेंचि नासोन जातें
कृपा केलिया रघुनाथें । प्रचितें येते ॥ ३ ॥
रघुनाथ भजनें ज्ञान जालें । रघुनाथ भजनें महत्त्व वाढलें ।
म्हणौनियां तुवां केले । पाहिजे आधीं ॥ ४ ॥ (दा. ६-७)

भाषा

भाषा-पालटें कांहीं । अर्थ वायां जात नाहीं ।
कार्यसिद्धि ते सर्वही । अर्थाच पासीं ॥ १ ॥
तथापि प्राकृता करितां । सस्कृताची सार्थकता ।
येरवीं त्या गुप्तार्था । कोण जाणे ॥ २ ॥
आतां असो हें बोलणें । भाषा त्यागूनि अर्थ घेणें ।
उत्तम घेऊन त्याग करणें । सोंली टरफलांचा ॥३॥ (दा ७-१)

---

१ अज्ञात । २ नहीं चलता । ३ निर्देश । ४ परा वाणी के परे । ५ रामदा । ६ धनीको । ७ शरणमें जाना । ८ मानना । ९ अनुभव । १० दूसरी भाषाके द्वारा । ११ व्यर्थ । १२ छिलका वकला ।

निद्रा, आळस व दुश्चितपण

दुश्चीतपणा सवें आळस । आळसें निद्रा विळास ।
निद्रा विळासें केवळ नास । आयुष्याचा ॥ १ ॥
निद्रा आळस दुश्चीतपण । हें चि मूर्खाचें लक्षण ।
येणें करितां निरूपण । उमजेचिना ॥ २ ॥
हे तिन्हीं लक्षणें जेथें । विवेक कैचा असेल तेथें ।
अज्ञानास यापरतें । सुख चि नाहीं ॥ ३ ॥
निजोनि उठतांच दुश्चीत । कदा नाहीं सावचित ।
तेथें कैचें आत्महित । निरूपणीं ॥ ४ ॥ (दा. ८-६)

सिद्धलक्षण

संदेहरहित साधन । तें चि सिद्धांचें लक्षण ।
अंतर्बाह्य समाधान । चळेना ऐसें ॥ १ ॥
अवघें ब्रह्मांड त्याचें घर । पंचभूतिक हा जोजार
मिथ्या जाणोन सत्वर । त्याग केला ॥ २ ॥ (दा. ८-९)

वर्तणूक

बहुतां जन्मांचा सेवट । नरदेह सांपडे अवचट ।
येथें वर्तावें चोखट । नीतिन्यायें ॥ १ ॥
साक्षेपें करितां कष्टती । परंतु पुढें सुखावती ।
खाती जेविती सुखी होती । यत्नेंकरूनी ॥ २ ॥
ऐक सदेवपणाचें लक्षण । रिकामा जाऊं नेदी[11] येक क्षण ।
प्रपंच वेवसायाचें ज्ञान । बरें पाहे ॥ ३ ॥
कर्म उपासना आणि ज्ञान । येणें राहे समाधान ।
परमार्थांचें जें साधन । तें चि ऐकत जावें ॥ ४ ॥ (दा. ११-३)

---

१ असावधानता । २ नहीं समझता । ३ इसकी अपेक्षा । ४ समस्त । ५ कार्य का विस्तार । ६ झूठ । ७ सहसा । ८ शुद्ध । ९ यत्न । १० सुखी होते हैं । ११ नहीं देता । १२ धन्धा ।

महंत लक्षण

शुद्ध नेटकें ल्याहावें। लेहोन शुद्ध शोधावें।
शोधून शुद्ध वाचावें। चुकों नये ॥ १ ॥
हरिकथा निरूपण। नेमस्तपणें राजकारण।
वर्तायाचें लक्षण। तेंही असावें ॥ २ ॥
पुसों जाणे सांगों जाणे। अर्थांतर करूं जाणे।
सकळिकांचें राखों जाणे। समाधान ॥ ३ ॥
दीर्घ-सूचना आधीं कळे। सावधपणें तर्क प्रवळे।
जाण जाणोनि निवळे। येथा योग्य ॥ ४ ॥
ऐसा जाणे जो समस्त। तो चि महंत बुद्धिवंत।
या वेगळे अंतवंत। सकळ कांहीं ॥ ५ ॥
आधींच सिकोन जो सिकवी। तो चि पावे श्रेष्ठ पदवी।
गुंतल्या लोकांस उगवी। विवेकवळें ॥ ६ ॥
अक्षर सुंदर वाचणें सुंदर। बोलणें सुंदर चालणें सुंदर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य सुंदर। करून दावी ॥ ७ ॥
सांकडीं मधें वर्तों जाणे। उपाधीमधें मिळों जाणे।
अलिप्तपणें रासों जाणे। आपणासी ॥ ८ ॥
आहे तरी सर्वा ठाईं। पाहों जातां कोठेंचि नाहीं।
जैसा अंतरात्मा ठाईंचा ठाईं। गुप्त जाला ॥ ९ ॥
तैसाच हा ही नानापरी। वहुत जनास शाहाणे करी।
नाना विया त्या विवरी। स्थूळ सूक्ष्मा ॥ १० ॥
राखों जाणे नीतिन्यायें। न करी न करवी अन्यायें।
कठिण प्रसंगीं उपाये। करूं जाणे ॥ ११ ॥

---

१ सीधा। २ लिखना चाहिए। ३ शुद्ध करना। ४ नियमित। ५ पूछ गच्छ करना जानता है। ६ दूरदर्शिता। ७ शुद्ध होता है। ८ व्यर्थ। ९ मुक्त करता है। १० संकट। ११ वहींके वहीं। १२ स्पष्ट करता है।

ऐसा पुरुष धारणेचा। तो चि आधार बहुतांचा।
दास म्हणे रघुनाथाचा। गुण घ्यावा ॥ १२ ॥ (दा ११-६)

निःस्पृह वर्तणूक

मूर्ख येकेदेसी होतो। चतुर सर्वत्र पाहातो।
जैसा वहुधा होऊन भोगितो। नाना सुखें ॥ १ ॥
तो चि अंतरात्मा महंत। तो कां होईल संकोचित।
प्रशस्त जाणता समस्त। विख्यात योगी ॥ २ ॥
ऐसें महंतें असावें। सर्व सारें शोधून घ्यावें।
पाहों जातां न संपडावें। येकायेकी ॥ ३ ॥
कीर्तिरूपें उदंड ख्यात। जाणती लाहान थोर समस्त।
वेश पाहातां शाश्वत। येक हि नाहीं ॥ ४ ॥
वेषभूषण तें दूषण। कीर्तिभूषण तें भूषण।
चाळणेवीण येक क्षण। जाउ च नेदी ॥ ५ ॥
लोक संकल्प विकल्प करिती। ते अवघेचि निर्फळ होती।
जनाची जना लाजवी वृत्ति। तेव्हां योगेश्वर ॥ ६ ॥
अखंड येकांत सेवावा। अभ्यास चि करीत जावा।
काळ सार्थक चि करावा। जनांसहित ॥ ७ ॥
उत्तम गुण तितुके घ्यावे। घेऊन जनास सिकवावे।
उदंड समुदाये करावे। परि गुप्त रूपें ॥ ८ ॥
अखंड कामाची लगबग। उपासनेस लावावें जग।
लोक समजोन मग। आज्ञा इच्छिती ॥ ९ ॥
आधीं कष्ट मग फळ। कष्टचि नाहीं तें निर्फळ।
साक्षेपेंविण केवळ। वृथा पुष्ट ॥ १० ॥

---

१ बुद्धिवान। २ एकाङ्गी। ३ अनेक प्रकारका। ४ तत्त्व। ५ मिले। ६ हमेशाका। ७ विना उद्योग के। ८ मडली। ९ त्वरा। १० प्रतीक्षा करते हैं।

अधिकार पाहोन कार्य सांगणें। साक्षेप पाहोन विश्वास धरणें।
आपला मगज राखणें। कांहीं तरी ॥ ११ ॥
हें प्रचितीचें बोलिलें। आधीं केलें मग सांगितलें।
मानेल तरी पाहिजे घेतलें। काणी येकें ॥ १२ ॥
महंतें महंत करावे। युक्ति बुद्धीनें भरावे।
जाणते करून विखरावे। नाना देसीं ॥ १३ ॥ (दा. ११-१०)

राजकारण

कर्म केलें चि करावें। ध्यान धरिलें चि धरावें।
विवरलें चि विवरावें। पुन्हा निरूपण ॥ १ ॥
अनन्य राहे समुदाव। इतर जनास उपजे भाव।
ऐसा आहे अभिप्राव। उपायाचा ॥ २ ॥
मुख्य हरिकथा निरूपण। दुसरें तें राजकारण।
तिसरें तें सावधपण। सर्व विषईं ॥ ३ ॥
चौथा अत्यंत साक्षेप। फेडावे नाना आक्षेप।
अन्याये थोर अथवा अल्प। क्ष्मा करीत जावे ॥ ४ ॥
जाणावें पराचें अंतर। उदासीनता निरंतर।
नीतिन्यायासि अंतर। पडों च नेदावें ॥ ५ ॥
संकेत लोक वेधावा। येकूनयेक बोधावा।
प्रपंचहि सावरावा। येथानशक्त्या ॥ ६ ॥
प्रपंचसमयो वोळखावा। धीर बहुत असावा।
संमंध पडों नेदावा। अति परी तयाचा ॥ ७ ॥
उपाधीसी विस्तारावें। उपाधींत न संपडावें।
नीचत्व पहिलें च घ्यावें। आणि मूर्खपण ॥ ८ ॥

---

१ फैलाना। २ चर्चा की जाय। ३ समूह। ४ शरन। ५ सन्देह। ६ सँभाल करे। ७ यथाशक्ति। ८ सम्बन्ध।

दोष देखोन झांकावे । अवगुण अखंड न बोलावे ।
दुर्जन सांपडोन सोडावे । परोपकार करूनी ॥ ९ ॥
फंड नासो चि नेदावा । पडिला प्रसंग सांवरावा ।
अतिवाद न करावा । कोणी येकासी ॥ १० ॥
दुसऱ्याचें अभिष्ट जाणावें । बहुतांचें बहुत सोसावें ।
न सोसे तरी जावें । दिगंतराप्रती ॥ ११ ॥
दुःख दुसऱ्याचें जाणावें । ऐकोन तरी वांटून घ्यावें ।
बरें वाईट सोसावें । समुदायाचें ॥ १२ ॥
शांती करून करवावी । तँन्हे सांडून सांडवावी ।
क्रिया करून करवावी । बहुतां करवी ॥ १३ ॥
करणें असेल अपायें । तरी बोलोन दाखऊं नये ।
परस्परें चि प्रत्ययें । प्रचितीस आणावा ॥ १४ ॥
जो बहुतांचें सोसीना । त्यास बहुत लोक मिळेना ।
बहुत सोसितां उरेना । महत्त्व आपुलें ॥ १५ ॥
राजकारण बहुत करावें । परंतु कळों च नेदावें ।
परपीडेवरी नसावें । अंतःकरण ॥ १६ ॥
हिरवटासी दुरी धरावें । कचरटासी न बोलावें ।
समंध पडतां सोडून जावें । येकीकडे ॥ १७ ॥
पाहातां तरी सांपडेना । कीर्ति करूं तरी राहेना ।
आलें वैभव अभिळासीना । कांहीं केल्यां ॥ १८ ॥
येकाची पाठी राखणें । येकास देखों न सकणें ।
ऐसीं नव्हेत कीं लक्षणें । चातुर्याचीं ॥ १९ ॥
न्याय बोलतांहि मानेना । हित तें चि न ये मना ।
येथें कांहीं च चालेना । त्यागेंविण ॥ २० ॥ (दा. ११-५)

---

१ पक्ष । २ इच्छित । ३ सहन किया जाय । ४ चाल । ५ झगडालु ।
६ क्षुद्र । ७ इच्छा नहीं करता ।

संसारांतील वर्तणुक

आधीं प्रपंच करावा नेटका। मग घ्यावें परमार्थविवेका।
येथें आळस करूं नका। विवेकी हो ॥ १ ॥
प्रपंच सांडून परमार्थ कराल। तेणें तुम्ही कष्टी व्हाल।
प्रपंच परमार्थ चालवाल। तरी तुम्ही विवेकी ॥ २ ॥
प्रपंच सांडून परमार्थ केला। तरी अन्न मिळेना खायाला।
मग तया करंट्याला। परमार्थ कैंचा ॥ ३ ॥
साहेब-कामास नाहीं गेला। गृहींच सुरवाडोन बैसला।
तरी साहेब-कुटीलें तयाला। पाहाती लोक ॥ ४ ॥
तैसेचि होणार अंतीं। म्हणौन भजावें भगवंतीं।
परमार्थाची प्रचिती। रोकडी घ्यावी ॥ ५ ॥
संसारीं असतां मुक्त। तो चि जाणावा संयुक्त
अखंड पाहे युक्तायुक्त। विचारणा हे ॥ ६ ॥
प्रपंचीं जो सावधान। तो परमार्थ करील जाण।
प्रपंचीं जो अप्रमाण। तो परमार्थीं खोटा ॥ ७ ॥
म्हणौनी असावी दीर्घ सूचना। अखंड करावी चाळणा।
पुढील होणार अनुमाना। आणून सोडावें ॥ ८ ॥
म्हणौनी सर्व सावधान। धन्य तयाचें महिमान।
जनीं राखे समाधान। तो चि येक ॥ ९ ॥
बरें खावें बरें जेवावें। बरें ल्यावें बरें नेसावें।
मनासारिखें असावें। सकळ कांहीं ॥ १० ॥
येक सुखी येक दुःखी। प्रत्यक्ष वर्तते लोकीं।
कष्टी होऊनिया सेखीं। प्रारब्धावरी घालिती ॥ ११ ॥
अचुक येत्न करवेना। म्हणौन केलें तें सजेना।
आपला अवगुण जाणवेना। कांहीं केल्यां ॥ १२ ॥

---

१ अभागे को। २ धनीके काज के लिए। ३ कामचोर। ४ प्रयत्न। ५ सफल नहीं होता।

बोलतो खरें चालतो खरें। त्यास मानिती लहान थोरें।
न्यायें अन्यायें परस्परें। सहज चि कळे ॥ १३ ॥

जंवरी चंदन झिजेना। तंव तो सुगंध कळेना।
चंदन आणि वृक्ष नाना। सगट होती ॥ १४ ॥

जंव उत्तम गुण न कळे। तों या जनास काये कळे।
उत्तम गुण देखतां निवळे। जगदांतर ॥ १५ ॥

जनीं जनार्दन वोळला। तरी काय उणें तयाला।
राजी राखावें सकळांला। कठीण आहे ॥ १६ ॥

हें आवघें आपणापासीं। येथें बोल नाहीं जनासी।
सिकवावें आपल्या मनासी। क्षणक्षणा ॥ १७ ॥

हरिकथा निरूपण। यरेंपणें राजकारण।
प्रसंग पाहिल्याविण। सकळ खोटें ॥ १८ ॥

विद्या उदंडें चि सिकला। प्रसंगमान चुकत चि गेला।
तरी मग तये विद्येला। कोण पुसे ॥ १९ ॥

इहलोक साधायाकारणें। जाणत्याची संगती धरणें।
परलोक साधाया कारणें। सद्गुरु पाहिजे ॥ २० ॥

सद्गुरुसी कायें पुसावें। हेंहि कळेना स्वभावें।
अनन्यभावें येकभावें। दोनी गोष्टी पुसाव्या ॥ २१ ॥

दोनी गोष्टी त्या कोण। देव कोण आपण कोण।
या गोष्टीचें विवरण। केलें चि करावें ॥ २२ ॥

तें परब्रह्म धुंडावें। विवेकें त्रैलोक्य हिंडावें।
माईक-विचारें खंडावें। परीक्षवंतीं ॥ २३ ॥

दिसेल तितुकें नासेल। उपजेल तितुकें मरेल।
रचेल तितुकें खचेल। रूप मायेचें ॥ २४ ॥

---

१ समान। २ बहुत। ३ अवसर का ख्याल। ४ मिथ्या विचार। ५ निबटारा करना।

नासिवत समजोन पाहिलें । तों तें अस्तां चि नस्तें जालें ।
सारासारें कळों आलें । समाधान ॥ २५ ॥
मी पण तें बुडालें । विवेकें वेगळेपण गेलें ।
निवृत्तिपदास प्राप्त जालें । उन्मनीपद ॥ २६ ॥
नाना किंतें निवारले । धोके अवघे चि तुटले ।
ज्ञानविवेकें पावन जाले । बहुत लोक ॥ २७ ॥
पतित पावनाचे दास । तेहि पावन करिती जगास ।
ऐसी हे प्रचीत मनास । बहुताच्या आली ॥ २८ ॥
(दा १२–१, १२ २, १२–३)

विवेक वैराग्य

विवेकेंविण वैराग्य केलें । तरी अविवेकें अनर्थी घातलें ।
अवघे वेर्थ चि गेलें । दोहींकडे ॥ १ ॥
ना प्रपच ना परमार्थ । अवघे जिणें चि जालें वेर्थ ।
अविवेकें अनर्थ । ऐसा केला ॥ २ ॥
विवेकें अंतरीं सुटला । वैराग्यें प्रपच तुटला ।
अंतर्बाह्य मोकळा जाला । नि सग योगी ॥ ३ ॥
जैसें मुखें ज्ञान बोले । तैसी च सर्वे क्रिया चाले ।
दीक्षा देखोनी चकित जाले । सुचिस्मत ॥ ४ ॥
आस्था नाहीं त्रैलोक्याची । स्थिति बाणली वैराग्याची ।
येत्न—विवेक—धारणेची । सीमा नाहीं ॥ ५ ॥
सगीत रसाळ हरिकीर्तन । ताळ बद्ध तान मान ।
प्रेमळ आवडीचे भजन । अतरा पासुनी ॥ ६ ॥
सन्मार्गे जगास मिळाला । म्हणजे जगदीश वोळला ।
प्रसंग पाहिजे कळला । कोणी येक ॥ ७ ॥

---

१ सन्देह । २ सब । ३ व्यर्थ । ४ मुक्त हो गया । ५ अवाक् । ६ प्रसन्न हुआ ।

प्रखर वैराग्य उदासीन । प्रत्ययाचें ब्रह्मज्ञान ।
स्नानसंध्या भगवद् भजन । पुण्यमार्गे ॥ ८ ॥
विवेक वैराग्य तें ऐसें । नस्तें वैराग्य हेंकाडपिसें ।
शब्दज्ञान येळिलसें । आपण चि वाटे ॥ ९ ॥
म्हणौन विवेक आणि वैराग्य । तें चि जाणिजे महद्भाग्य ।
रामदास म्हणे योग्य । साधु जाणती ॥ १० ॥ (दा. १२-४)

उत्तम पुरुष

आपण येथेष्ट जेवेंण । उरलें तें अन्न वाटणें ।
परंतु वाया दवडणें । हा धर्म नव्हे ॥ १ ॥
तैसें ज्ञानें तृप्त व्हावें । तें चि ज्ञान जनास सांगावें ।
तरतेन बुडो नेदावें । बुडतयासी ॥ २ ॥
उत्तम गुण स्वयें घ्यावें । ते बहुतांस सांगावें ।
वर्तल्याविण बोलावें । ते शब्द मिथ्या ॥ ३ ॥
शरीर परोपकारी लावावें । बहुतांच्या कार्यास यावें ।
उणें पडों नेदावें । कोणियेकाचें ॥ ४ ॥
दुसऱ्याचें अंतर जाणावें । तदनुसार चि वर्तावें ।
लोकांस परीक्षीत जावें । नाना प्रकारें ॥ ५ ॥
नेमक चि बोलावें । तत्काळ चि प्रतिवचन द्यावें ।
कदापि रागास न यावें । क्षमारुपें ॥ ६ ॥
आलस्य अवघाच दवडावा । येत्न उदंड चि करावा ।
शब्द मत्सर न करावा । कोणियेकाचा ॥ ७ ॥
उत्तम पदार्थ दुसऱ्यास द्यावा । शब्द निवडून बोलावा ।
सावधपणें करीत जावा । संसार आपला ॥ ८ ॥
मरणाचें स्मरण असावें । हरिभक्तीस सादर व्हावें ।
मरोन कीर्तीस उरवावें । येणें प्रकारें ॥ ९ ॥

---

१ एकांगी पागलपन । २ अधरा । ३ तैरनारने । ४ प्रत्युत्तर ।

नेमकेपणें वर्तों लागला । तो बहुतांस कळों आला ।
सर्व आर्जवी तयाला । कायें उणें ॥ १० ॥
ऐसा उत्तम गुणी विशेष । तयास म्हणावें पुरुष ।
जयाच्या भजनें जगदीश । तृप्त होये ॥ ११ ॥
कीर्ती पाहों जातां सुख नाहीं । सुख पाहतां कीर्ती नाहीं ।
विचारेंविण कोठें चि नाहीं । समाधान ॥ १२ ॥
परांतरास न लावावा ढेंका । कदापि पडों नेदावा चुका ।
क्षमासीळ तयाच्या तुका । हानी नाहीं ॥ १३ ॥
आपलें अथवा परावें । कार्य अवघेंच करावें ।
प्रसंगीं कामास चुकवावें । हें विहित नव्हे ॥ १४ ॥
पेरिलें तें उगवतें । बोलण्यासारिखें उत्तर येतें ।
तरी मग कर्कश बोलावें तें । कांये निमित्य ॥ १५ ॥
दंभ दर्प अभिमान । क्रोध आणी कठिण वचन ।
हें अज्ञानाचें लक्षण । भगवद्गीतेंत बोलिलें ॥ १६ ॥
जो उत्तम गुणें शोभला । तोचि पुरुष माहा भला ।
कित्येक लोक तयाला । शोधित फिरती ॥ १७ ॥
मनापासून भक्ति करणें । उत्तम गुण अगत्य धरणें ।
तया महापुरुषाकारणें । धुंडीतें येती ॥ १८ ॥
ऐसा जो महानुभाव । तेणें करावा समुदाव ।
भक्तियोगें देवाधिदेव । आपुला करावा ॥ १९ ॥
आपण आवेंचितें मरोन जावें । मग भजन कोणें करावें ।
या कारणें भजनास लावावें । बहुत लोक ॥ २० ॥
आमची प्रतिज्ञा ऐसी । कांहीं न मागावें शिष्यासी ।
आपणामागें जगदीशासी । भजत जावें ॥ २१ ॥

---

१ नियमित । २ सरल । ३ धक्का । ४ भूल । ५ क्षमावान् । ६ महत्त्व । ७ कठोर । ८ अवश्य । ९ ग्रहण किये जाएँ । १० खोज करते करते । ११ एकाएक ।

या कारणें समुदाव । जाला पाहिजे मोहोछाव ।
हातोपातीं देवाधिदेव । बोळेसा करावा ॥ २२ ॥
जेणें बहुतांस घडे भक्ति । ते हे रोकडी प्रबोधशक्ति ।
बहुतांचें मनोगत हातीं । घेतलें पाहिजे ॥ २३ ॥
जें जें जनास मानेना । तें तें जन हि मानीना ।
आपण येकला जन नाना । सृष्टिमधें ॥ २४ ॥
म्हणोन सांगाती असावें । मानेंत मानेंत शिकवावें ।
हळुहळु सेवटा न्यावें । विवेकानें ॥ २५ ॥ (दा. १२-१०)

भिक्षा

भिक्षेविषीं लाजों नये । बहुत भिक्षा घेऊं नये ।
पुसतां हि देऊं नये । वोळखी आपली ॥ १ ॥
आपली भिक्षा सोडूं नये । वारें अन्न खाऊं नये ।
निःस्पृहासि बडों नये । मोल यात्रा ॥ २ ॥ (दा. १४-१)
भिक्षा मागोन जो जेविला । तो निराहारी बोलिला ।
प्रतिग्रहा वेगळा जाला । भिक्षा मागतां ॥ ३ ॥
नित्य नूतन हिंडावें । उदंड देशाटण करावें ।
तरीच भिक्षा मागतां बरवें । श्लाघ्यवाणें ॥ ४ ॥
भिक्षेनें वोळखी होती । भिक्षेनें भरम चुकैती ।
सामान्य भिक्षा मान्य करिती । सकळ प्राणी ॥ ५ ॥
भिक्षे ऐसें नाही वैराग्य । वैराग्या परतें नाहीं भाग्य
वैराग्य नस्तां अभाग्य । येक देसी ॥ ६ ॥
सुखरूप भिक्षा मागणें । ऐसी निःस्पृहतेची लक्षणें ।
मृद वाग्विळास करणें । परम सौख्यकारी ॥ ७ ॥ (दा. १४-

---

१ बुखेस । २ दान ग्रहण करनेसे मुक्त । ३ निर्मूलन होते हैं ।

कवित्व

जेणें अनुताप उपजे । जेणें लौकिक लाजे ।
जेणें ज्ञान उपजे । या नाव कवित्व ॥ १ ॥
जेणें देहबुद्धि तुटे । जेणें भवसिंधु आटे ।
जेणें भगवंत प्रगटे । या नांव कवित्व ॥ २ ॥
जेणें होये समाधान । जेणें तुटे संसार बंधन ।
जया मानिती सज्जन । तया नांव कवित्व ॥ ३ ॥
जेणें सद्वस्तु भासे । जेणे भास हा निरसे ।
जेणें भिन्नत्व नासे । या नाव कवित्व ॥ ४ ॥ (दा. १४–३)

चातुर्य लक्षण

जीवें जीवांत घालावा । आत्मा आत्म्यांत मिसळावा ।
राहू राहों शोध घ्यावा । परांतराचा ॥ १ ॥
वेष धरावा बावळा । अंतरीं असाव्या नाना कळा ।
सगट लोकांचा जिव्हाळा । मोडूं नये ॥ २ ॥
भेटें भेटीं उरीं राहणें । हे चातुर्याचीं लक्षणें ।
मनुष्य मात्र उत्तम गुणें । समाधान पावे ॥ ३ ॥ (दा. १५–१)

उपासना

उपासनेचा मोठा आश्रयो । उपासनेवीण निराश्रयो ।
उदंड केलें तरी जो जयो । मात नाहीं ॥ १ ॥
समर्थाची नाहीं पोठी । तयास भलताच कुंटी ।
या कारणें उठाउठी । भजन करावें ॥ २ ॥

---

१ पछताया । २ सूख जाता है । ३ भ्रम । ४ जी । ५ सादा । ६ लगन । ७ बार बार मिलने पर ही मिलने की इच्छा । ८ आश्रय । ९ आधार । १० सताता है । ११ तुरन्त ।

भजन साधन अभ्यास । येणें पाविजे परलोकास ।
दास म्हणे हा विश्वास । धरिला पाहिजे ॥ ३॥ (दा. १६-१०)

कोण्हांस कांहीं च न मागावें । भगद्भजन वाढवावें ।
विवेक वळें जन लावावे । भजनाकडे ॥ १ ॥
परांतर रक्षायाचीं कामें । बहुत कठीण विवेक वेंमें ।
सहच्छेनें स्वधर्में । लोक राहाटी ॥ २ ॥
आपण तुरुक गुरु केला । शिष्य चांभार मेळविला ।
नीच यातीनें नासला । समुदाव ॥ ३ ॥
ब्राह्मण मंडळ्या मेळवाव्या । भक्त मंडळ्या मानाव्या ।
संत मंडळ्या शोधाव्या । भूमंडळीं ॥ ४ ॥
उत्कट भव्य तें चि घ्यावें । मळमळीत अवघेंचि टाकावें ।
निस्पृहपणें विख्यात व्हावें । भूमंडळीं ॥ ५ ॥
अखंड तजवीजा चाळणा जेथें । पाहातां काय उणें तेथें ।
येकांतेविण प्राणीयांतें । बुद्धि कैंची ॥ ६ ॥
येकांतीं विवेक करावा । आत्माराम वोळखावा ।
येथून तेथवरी गोंवा । कांहींच नाहीं ॥ ७ ॥ (दा. १९-६)
जो दुसऱ्यावरी विश्वासला । त्याचा कार्यभाग बुडाला ।
जो आपण चि कष्टत गेला । तो चि भला ॥ ८ ॥
खळदुर्जनासी भ्यालें । राजकारण नाहीं राखिलें ।
तेणें अवघें प्रगट जालें । वरें वाईट ॥ ९ ॥
समुदाव पाहिजे मोठा । तरी तनावा असाव्या बळकटा ।
मठ करुनी ताँठा । धरूं नये ॥ १० ॥
दुर्जन प्राणी समजावे । परी ते प्रगट न करावे ।
सज्जनापरीस आळवावे । महत्त्व देउनी ॥ ११ ॥

---

१ किसीसे । २ रहस्य, मर्म । ३ रहन सहन । ४ आदर करे । ५ युक्ति ।
६ गुत्थम् गुत्था । उलझन । ७ अभिमान ।

गनीमाच्या देखतां फौजा । रणशूरांच्या फुर्फुरिती भुजा ।
ऐसा पाहिजे कीं राजा । कैपेंक्षी परमार्थी ॥ ११ ॥
तयास देखतां दुर्जन धाके । वैसवी प्रचीतीचे तडाखे ।
वंड पापांडाचे वोखे । सहज चि होती ॥ १२ ॥
धटासी आणावा धट । उत्धटासी पाहिजे उत्धट ।
खटनटासी खटनट । अगत्य करी ॥ १३ ॥
जैशास तैसा जेव्हां भेटे । तेव्हां मज्यालसी थाटे ।
इतुकें होतें परी धनी कोठें । दृष्टीस न पडे ॥ १४ ॥
(दा. १९-९)

सामर्थ्य आहे चळवळेचें । जो जो करील तयाचें
परंतु येथें भगवंताचें । अधिष्ठान पाहिजे ॥ १५ ॥
(दा. २०-४)

---

१ समर्थक । २ डरता है । ३ सपाटे । ४ पीडाएँ नष्ट होती हैं । ५ ढीठ । ६ सभामें रंग आता है । ७ उद्योग । ८ आधार ।

श्री रामदासांची कविता (प्रथम खंड)

(लंका दहन) सुंदर कांड

गृहां गोपुरां माजि तो पुछ घाली। त्रिकूटाचळीं आगि नेटें[1] निघाली।
निंदी हाट बाजार चौवार कुंचे। पळे चोंवली नागिवा लोक नाचे ॥१॥
बहुतांपरींची बहु हांक जाली। पळा रे पळा रे पळा आगि आली।
गुरें वांसुरें सिंगुरें लेकुरें तें। सुणीं मंजरें तें खरें येशरें तें ॥ २ ॥
किती सेरडे मेंढरें तें अंचाटें। जळालीं किती राक्षसें कल्कलाटें।
किती शकटें कुंजरें दिव्य घोडे। मही मंडळीं त्यांस नाहींत जोडे ॥३॥
बहुतांपरींचीं बहु रम्य यानें। बहु साल छत्रें[10] विचित्रें निशाणें।
बहुतांपरींच्या बहु साल शाळा। जळाल्या विथीघा विचित्रा विशाळा॥४
पळे लोक तेथें वळें पुछय घाली। बहुतां विरांची बहु शांति जाली।
महां पुछय तें ज्वाळ भंभोळ[11] जाला। बहु साक्षपें वहिंतो चेतविला ॥५॥
पळाले भयासूर ते दूरी थोवें[12]। कपीवीर लांगूळ घेऊनि धांवे।
बहु धांवताहे बहु भोंवताहे। उठे वन्हिचें चक्रें[13] लांगूळ पाहे ॥ ६ ॥
फिरे गर्गराटें कपी चक्र जैसा। विधी शक्र आवेशें पाहे तमासा।
विरां खेचरां भूचरां अंत जाला। त्रिकूटाचळा थोर कल्पांत आला ॥७॥
बहुसाल दारूमधें पुछ घाली। उसाळें नभामाजी दारू निघाली।
तडाडी थडाडी भडाडी घडाडी। शशी सूर्य नक्षत्र माळा कडाडी॥८॥
बहु धूम्र तेणें कदाही दिसेना। बहुसाल पेंढोणि ते सोसवेना।
बहु घोष तो शब्द कानीं पडेना। कपी रोपला झाडितां ही झडेना ॥९॥
पुढें धूम्र त्यागी धगागीत आगी। महां वह्नि कोपे चि जाला विभागी।
त्रिकूटाचळू कांचनाचा तखोंखी। सतेजीं क्र तेजें झकाकी लखाखी।१०।

(प्रख पृ. ८-९)

---

१ लांगूल। दुम। २ जोरसे। ३ मार्ग में। ४ बढ़ गई। ५ हुंकार।
६ कुत्ते। ७ गधे। ८ ऊँट। ९ तुलना। १० छत्र। ११ भभूका। १२ समूह।
१३ वलय। १४ एक चित्त होकर। १५ बारूद। १६ बदबू। १७ चमकीला।

युद्ध कांड

(राम–रावण युद्ध)

रणीं लोटला राम हा सूर्य वांसी । महा युद्ध आरंभिलें रावणेंसीं ।
उभे राहिले काळ कृदांत जैसे । महावीर त्या घोर आकांत भासे ॥१॥
बळें सोडितां शक्ति नेटें सरारी । महावात विख्यात पिंछें भरारीं ।
मही सप्त पाताळ घोषें गॅरारी । पळालीं भुतें काळ पोटीं थरारी ॥२॥
फणी कूर्म वाराह थकीत जाले । विमानाहुनी देवरुसी पळाले ।
ग्रहे सोम सूर्यादि पोटीं गळाले । कपी खेचरां दीगजां कंप जाले ॥३
प्रसंगीं तये थोर उत्पात जाला । नदीं श्रोणीतांचा बळें पूर आला ।
धुंमारें वहू दाटलैंसे दिगांतीं । असंभाव्य ते उंल्कापात होती ॥ ४ ॥
बळें कोपले रुद्र काळाग्नि जैसे । अरी राय ते मातले भीम तैसे ।
तया जूझतां कोण कोण्हास वारी । रणीं भीडती काळ कोदंडधारी ॥५॥
रिपू सोडिती घोर शस्त्रें सणाणा । बळें वाजती बाण भाले सणाणा ।
वहूसाल स्फुलींग जाती फणाणा । महीं मंडळी घोष ऊठे दणाणा ॥६॥
महां शक्ति ते काळरूपें कडाडी । असंभाव्य ते ज्वाळवही भडाडी ।
मही मेरु मांदार घोषें धडाडी । बळें शोकेला सिंधु पोटीं तडाडी ॥७॥
पुढें राघवें लक्षिलें रावणातें । बळें मस्तकें तोडिलीं बाणघातें ।
गिरी सीखरांचे परी ते विशाळें । पुन्हां नीघती कंठनाळें दिसेंाळें ।।८॥
सिरें देखतां राम चकीत जाला । म्हणे मृत्य नाहीं गमे रावणाला ।
वदे मातुळी स्वामि देवाधिदेवा । सुधावक्ष भेदूनि शत्रू वधावा ॥९॥
कुपी फोडिली बाणघातें निघातें । तेणें रावणूं चालिला मृत्यपंथें ।
ऋसीदेव गंधर्व ते सर्व तोषें । विमानीं सुरें गर्जती नामघोषें ॥ १० ॥

(पृ. ९१–९२)

---

१ वंशका । २ कुहराम । ३ पंरा । ४ गर्जना करता है । ५ रफफा । ६ धुवाँ । ७ उल्कापात । ८ चिनगारी । ९ सोख लिया । १० गलेकी हड्डियाँ । ११ बड़ी । १२ अमृतसे भरा हुआ वक्षस्थल । १३ प्रत्याघातसे ।

अभंग (स्फुट ओव्या)

प्रपंचीं असोनि परमार्थ करावा । वरा विवरावा निरंजन ॥ १ ॥
निरंजन देव प्रगटे अंतरीं । मग भरोवरी करीना कां ॥ २ ॥
करीना कां परी संसार बाधीना । परी तो साधीना काय करूं ॥ ३ ॥
काय करूं देवा लोकांसी उपाय । टाकवेना सोये विश्रांतीची ॥ ४ ॥
विश्रांतीची सोये समाधान होये । मोक्षाचा उपाय सद्गुरुची ॥ ५ ॥
सद्गुरुसंगती चुके अधोगती । दास म्हणे मती पालटावी ॥ ६ ॥
(पृ. २५९)

प्रवृत्तीं सासुरें नीवृती माहेर । तेथें निरंतर मन माझें ॥ १ ॥
माझें मनीं सदा माहेर सुटेना । सासुरें तुटेना काय करूं ॥ २ ॥
काय करूं मज लागला लोकीक । तेणें हा विवेक दुरी जाये ॥ ३ ॥
दुरी जाये हीत मजची देखतां । प्रेत्न करूं जातां होत नाहीं ॥ ४ ॥
होत नाहिं प्रेत्न संतसंगेंवीण । रामदास खूण सांगतसे ॥ ५ ॥
(पृ. २७४)

भावेंविण भक्ती भक्तीविण मुक्ती । मुक्तीवीण शांति आढळेना ॥ १ ॥
भावें भक्ती सार भक्ती भावें सार । पावे पैलपार विश्वजन ॥ २ ॥
भावभक्तीविण उधरला कोण । यालागी सगुण भक्तीभाव ॥ ३ ॥
रामदास म्हणे दक्ष ज्ञानी जाणे । भक्तीचीये खुणे पावईल ॥ ४ ॥
(पृ. २९३)

कां वो राम माये दुरी धरीयेलें । कठीण कैसें जालें चित्त तुझें ॥ १ ॥
देउनी आळींगन प्रीती पडीभरें । कै सुख पीतांवरें पुससील ॥ २ ॥
घेउनी कडीये धरुनी हनुवटी । कै गुजगोष्टी सांगसील ॥ ३ ॥
रामदास म्हणे केव्हां संमोखीसी । प्रेम पान्हा देसी जननीये ॥ ४ ॥
(पृ. २९८-२९९)

---

१ संग्रह । २ परिवर्तन हो । ३ प्रवृत्ति । ४ नहीं छुटता । ५ नहीं मिलता । ६ उद्धार हुआ । ७ अतिशयतासे ८ सान्त्वन करोगी ।

सुखाचे सांगाती सर्वहि मिळती। दुःख होतां जाती निघोनियां ॥१॥
निघोनियां जाती संकटाचे वेळे। सुख होतां मिळे समुदाव ॥ २ ॥
समुदाव सर्व देहाचे समंधी। तुटली उपाधी रामदासीं ॥ ३ ॥

स्फुट प्रकरणें (पृ. २९९)

देह्याचा भर्वसा नाहिं। तारुण्य चळतें जनीं।
वृधापीं विटंबे काया। रूप विद्रूप होतसे ॥ १ ॥
केंस ते रेसीमा ऐसे। पुढें धुंकुल होतसे।
टकलें पडती माथां। सेंडीचा ठावं जातसे ॥ २ ॥
दुरुनी न्याहाळे डोळां। ते डोळे मंद जाहाले ॥ ३ ॥
नासिकीं गळतें पाणी। जिव्हेची बोवडी वळे।
दात ते सर्वहि गेले। मान हाले निरंतरीं ॥ ४ ॥
सरतो धरेना वारा। मळमूत्र चहूंकडे।
खोकितां वोकितां नासी। नाना दुखें बळावलीं ॥ ५ ॥
मागील आठवे सर्वे। दुख वाटे क्षणक्षणा।
आकेंद तो कुंणे कुंथे। आयुष्य न सरे कदा ॥ ६ ॥
सर्व येकीकडे जाती। हांसती खेळती सुखें।
पाहातां न येती कोण्ही। आपलाल्या कामाकडे ॥ ७ ॥
ऐसें हें दुख वृधापीं। कळलें पाहिजे जना।
परत्र साधणें आधीं। तारुणींच उठाउठी ॥ ८ ॥

(पृ. ३६९)

वन्ही तो चेतवावा रे। चेतवितांच चेततो।
विवेक जाणिजे तैसा। वाढवितांच वाढतो ॥ १ ॥
संग तो साक्षपीयाचा। धरीतां साक्षपु घडे।
साक्षपें साक्षपु वाढे। पुरती मनकामना ॥ २ ॥

---

१ बुढापे में। २ धागे निकले हुए जैसा। ३ चोटीका। ४ मूल ५ देखता है। ६ अघोवायु छुटती है। ७ कराहता है। ८ प्रज्वलित करें यत्न करनेवालेका। १० मनोरथ।

कष्टतां सौख्य मानावें । कष्टीं फळची पाविजे ।
आळसें सुख वाटे तें । दु:खें ब्रह्मांड भोगवी ॥ ३ ॥
केल्यानें होत आहे रे । आधीं केलेंची पाहिजे ।
येत्न तो देव जाणावा । अंतरीं धरितां बरें ॥ ४ ॥
आचुक येत्न तो देवो । चुकणें दैत्य जाणिजे ।
न्याय तो देव जाणावा । अन्याय राक्षसी क्रिया ॥ ५ ॥

(पृ. ३८९)

आनंदवन भुवन

जन्मदु:खें जरादुखें । नित्य दुःखें पुन्हपुन्हा ।
संसार त्यागणें जाणें । आनंदवनभुवना ॥ १ ॥
संसार वोढितां[१] दुखें । ज्याचें त्यासीच ठाउकें ।
परंतु येकदां[२] जावें । आनंदवनभुवना ॥ २ ॥
जन्म ते सोसिले मोठे । आपाय[३] बहुतांपरी ।
उपायें धाडिलें देवें । आनंदवनभुवना ॥ ३ ॥
स्वप्नीं जें देखिलें रात्रीं । तें तें तैसेंची होतसे ।
हिंडतां फिरतां गेलों । आनंदवनभुवना ॥ ४ ॥
स्वधर्माआड जें विघ्नें । तें तें सर्वत्र उठीलीं ।
लाटिलीं कुटिलीं देवें । क्षपिलीं[४] कापिलीं बहु ॥ ५ ॥
कल्पांत मांडला मोठा । म्लेंच दैत्य बुडावया[५] ।
कैपक्ष घेतला देवीं । आनंदवनभूवनीं ॥ ६ ॥
बुडाले[६] सर्वही पापी । हिंदुस्थान वळावलें ।
अभक्तांचा क्षयो जाला । आनंदवनभुवनीं ॥ ७ ॥
येथून वाढला धर्मु[७] । रमा[८] धर्म समागमें ।
संतोष मांडला मोठा । आनंदवनभुवनीं ॥ ८ ॥

---

१ अतिशय दु:खका अनुभव कराता है। २ कष्टोंके साथ सासारिक कार्य करनेका दुःख। ३ अपाय ४ धमकाया। ५ नष्ट करनेके लिए। ६ नष्ट हो गये। ७ धर्म। ८ लक्ष्मी।

बुडाला औरंग्या[1] पापी । म्लेंच संहार जाहाला ।
मोडलीं मांडलीं छेत्रें[2] । आनंदवनभुवनीं ॥ ९ ॥
बुडाले भेदवादी ते । नष्टचांडाळ पातकी ।
ताडिले पाडिले देवें । आनंदवनभुवनीं ॥ १० ॥
गळाले पळाले मेले । जाले देशधडी[3] पुढें ।
निर्मळ जाहाली पृथ्वी । आनंदवनभुवनीं ॥ ११ ॥
उदंड जाहालें पाणी । स्नानसंध्या करावया ।
जप तप अनुष्ठानें । आनंदवनभुवनी ॥ १२ ॥
लीहीला प्रत्ययो आला । मोठा आनंद जाहाला ।
चढता वाढता प्रेमा । आनंदवनभुवनीं ॥ १३ ॥
बंड पाषांड उडालें[4] । शुध आध्यात्म वाढलें ।
राम कर्ता राम भोक्ता । आनंदवनभुवनीं ॥ १४ ॥
रामवरदायनी माता । गर्द घेउनी उठीली ।
मारिले पुर्वींचे पापी[5] । आनंदवनभुवनीं ॥ १५ ॥
प्रत्येक्ष चालिली रायां । मूळमाया समागमें[6] ।
नष्ट चांडाळ ते खाया । आनंदवनभुवनीं ॥ १६ ॥
भक्तांसी रक्षिलें मागें । आतां ही रक्षिते पाहा ।
भक्तांसी दीधलें सर्वें । आनंदवनभुवनीं ॥ १७ ॥
सामर्थ्यें येशकीर्तीचीं । प्रतापें सांडिली सीमा ।
ब्रीदेंची दीधलीं सर्वें । आनंदवनभुवनीं ॥ १८ ॥
मनासी प्रचीती आली । शब्दीं विश्वास वाटला ।
कामना पुरती सर्वे । आनंदवनभुवनीं ॥ १९ ॥
स्मरलें लिहिलें आहे । बोलता चालता हरी ।
काये होईल पाहावें । आनंदवनभुवनीं ॥ २० ॥

---

१ औरंगजेब । २ तीर्थ । ३ देशान्तरण किया । ४ खण्डन हुआ । ५ दमन किया । ६ राजाके साथ मूल माया चल रही.

महिमा तो वर्णवेना । विशेष बहुतांपरीं ।
विद्यापीठ तें आहे । आनंदवनभुवनीं ॥ २१ ॥ (पृ. ४२१)

अध्यात्मसार

दुखदारिद्रेंउद्वेगें । लोक सर्वत्र पीडिले ।
मुळीची कुळदेव्या हे । संकटीं रक्षितें बळें ॥ १ ॥
रामउपासना माझी । त्रयलोक सुख पावलें ।
सोडिले देव इंद्रादी । तोडिलीं बंधनें बळें ॥ २ ॥
कीर्तीसी तुळणा नाहीं । प्रतापें आगळा बहु ।
न्याय नेमस्त हे लीळा । न भूतो न भविष्यति ॥ ३ ॥
सार संसार शक्तीनें । शक्तीनें शक्ती भोगिजे ।
शक्त तो सर्वहि भोगी । शक्तीवीण दरीद्रता ॥ ४ ॥
शक्तीनें मिळती राज्यें । युक्तीनें येत्न होतसे ।
शक्ती युक्ती जये ठाई । तेथें श्रीमंत धांवती ॥ ५ ॥
युक्तीनें चालती सेना । युक्तीनें युक्ती वाढवी ।
संकटीं आपणा रक्षी । रक्षी सेना परोपरी ॥ ६ ॥
उदंड खस्तीची कामें । मर्द मारुनि जातसे ।
नामर्द काय तें लंडी । सदा दुश्चीत लालची ॥ ७ ॥
फित्व्यानें बुडती राज्यें । खबर्दारी असेचिना ।
युक्ती ना शक्ती ना वेगी । लोक राजी असेचिना ॥ ८ ॥
मुक्त केल्या देवकोडी । सर्वहि शक्तीच्या बळें ।
समर्थ भवानी माता । समर्था वरु दीधला ॥ ९ ॥
अंतरीं कल्पना केली । येकांतीं बोलिलीं बहु ।
रक्षिता देव देवांचा । त्याचा उछाव इछिला ॥ १० ॥
(पृ-४३४)

---

१ दुःख दरिद्र आदि के त्राससे । २ निचोड़ । ३ प्रभु । ४ कष्टोंके । ५ दुर्बल
६ विश्वासघातसे । ७ सावधानी । ८ करोडो देव । ९ वर । १० रामारोह ।

श्री रामदासांची कविता द्वितीय खंड.

समाधान ('आत्माराम' से)

स्वामी परीसांचा स्पर्श होतां। शिष्य परीसचि जाला तत्वतां
गुरु शिष्याची ऐक्यता। जाली स्वानुभवें ॥ १ ॥
गुजें स्वामींचा हृदईचें। शिष्यास वर्म तयाचें।
प्राप्त जालें योगियांचें। निज बीज ॥ २ ॥
बहुता जन्मांचा सेवटीं। जाली स्वरूपेसि भेटी।
येका भावार्थासाठीं। परब्रह्म जोडलें ॥ ३ ॥
जो वेद शास्त्रांचा गर्भ। निर्गुण परमात्मा स्वयंभ।
तयाचा एकसरा लाभ। जाला सद्भावें ॥ ४ ॥
जे ब्रह्मादिकांचें माहेर। अनंत सुखाचें भांडार।
जेणें हा दुर्गम संसार। सुखरूप होये ॥ ५ ॥
ऐसें जयास ज्ञान जालें। तयाचें बंधन तुटलें।
येरां नसोनीच जडलें। सदृढ अविवेकें ॥ ६ ॥
संदेह हेंचि बंधन। निशेष तुटला तेंचि ज्ञान ॥
निःसंदेहीं समाधान। होये आपैसें ॥ ७ ॥ (समास ५ वा.)

करुणाष्टकें, धाट्या, सवाया आदिसे

(१) अनुदिन अनुतापें तापलों रामराया।
परम दिन दयाळा नीरसीं मोहमाया।
अचपळ मन माझें नावरे आंवरीतां।
तुजविण शिणें होतो धांव रे धांव आतां ॥ १ ॥

---

१ पारस मणीका। २ सचमुच। ३ गुप्त। ४ भक्तिके कारण। ५ लगातार। ६ दूसरोंको। ७ जुड़ गया। ८ अधीन। ९ दूर होजा। १० रंजसे। ११ त्रस्त हो गया हूँ। १२ चंचल। १३ नियंत्रित करने पर भी नियंत्रित नहीं होता। १४ थकावट।

चपळपण मनाचें मोडितां मोडवेना।
सकळ स्वजन माया तोडितां तोडवेना।
घडि घडि विंघडे हा निश्चयो अंतरींचा।
म्हणवुनि करुणा हे योलतो दीनवाचा ॥ २ ॥

तुजविण करुणा हे कोण जाणेल माझी।
सिणत सिणत पोटीं लागली आस तूझी।
झडकरि[2] झडे[3] घालीं धांव पंचानना रे।
तुजविण मज नेते जंवुकी[4] वासना रे ॥ ३ ॥

सवळ जनक माझा रामलावण्य पेटी[5]।
म्हणवुनी मज पोटीं लागली आस मोठी।
दिवस गणित वोठीं[6] प्राण ठेवूनि कंठीं।
अवचट मज भेटी होत घालीन मीठी[7] ॥ ४ ॥

स्वजन जन-धनाचा कोण संतोष आहे।
रघुपतिविण आतां चित्त कोठें न राहे।
जिवलग जिव घेती प्रेत सांडूनि जाती।
विपय सकळ नेती मागुता जन्म देती ॥ ५ ॥

उपरति मज रामीं जाहली पूर्ण कामीं।
सकळ श्रम विरामीं राम विश्राम धामीं।
घडि घडि मन आतां रामरूपीं भरावें।
रघुकुळ टिळका रे आपुलेसें करावें ॥ ६ ॥

(२) वळें लावितां चित्त कोठें जैडेना[10]।
समाधान तें कांहिं केल्या घडेना।
नव्हे धीर नैनीं सदा नीर लोटे[11]।
उदासीन हा काळ कोठें न कंठे[12] ॥ १ ॥

---

१ विचलित होता है। २ शीघ्रतया। ३ झपट पडो। ४ सियार के समान ५ संदूक। ६ होंठोसें। ७ आलिंगन। ८ प्यार करनेवाले। ९ वैराग्य १० नहीं लगता। ११ बहता है। १२ नहीं बीतता।

कृपाळुपणें भेटि दे रामराया।
वियोगें तुझ्या सर्व व्याकूळ काया।
जनामाजि लौकीक हाही न सूटे।
उदासीन हा काळ कोठें न कंठे ॥ २ ॥

(३) नसे भक्ति ना ज्ञान ना ध्यान कांहीं।
नसे प्रेम हें रामविश्राम नाहीं।
असा दीन अज्ञान मी दास तूझा।
समर्था जनीं घेतला भार माझा ॥ १ ॥

भज कोंवसा राम कैवल्य-दाता।
तयाचेनि हे फीटली सर्व चिंता।
समर्था तया काय उत्तीर्ण व्हावें।
सदा सर्वदा नाम वाचे वदावें ॥ २ ॥

(४) तुझें रूपडें लोचनीं म्यां पहावें।
तुझे गूण गातां मनासी रहावें।
उठो आवडी भक्तिपंथेंचि जातां।
रघूनायका मागणें हेंचि आतां ॥ १ ॥

सदा सर्वदा योग तूझा घडावा।
तुझे कारणीं देह माझा पडावा।
नुपेक्षीं मज गूणवंता अनंता।
रघूनायका मागणें हेंचि आतां ॥ २ ॥

(५) रघुविर भजनाची मानसीं प्रीति लागो।
रघुविर स्मरणाची अंतरीं वृत्ति जागो।
रघुविरचरणाची वासना वास मागो।
रघुविर गुण गातां वाणि हे नित्य रंगो ॥ १ ॥

---

१ व्यवहार। २ आधार। ३ दूर हुई। ४ उनृण। ५ रूप। ६ दिलचस्पी उत्पन्न हो। ७ सहवास।

सकळ भुवनतारी राम लीलावतारी।
भवभयअपहारी राम कोदंडधारी।
मनन करि मना रे धीर हे वासना रे।
रघुविरभजनाची हे करी कामना रे ॥ २॥

(६) चकोरासि चंद्रोदयीं सुख जैसें।
रघूनायका देखतां सुख तैसें।
सगुणासि लांचावले स्थीर राहे।
रघूनंदनेवीण कांहीं न पाहे ॥ १॥

परम सुखनदीचा मानसीं पूर लोटे।
घननिळ तनु जेव्हां अंतरीं राम भेटे।
सुख परमसुखाचें सर्व लावण्य साचें।
स्वरुप जगदिशाचें ध्यान त्या ईश्वराचें ॥ २॥

मधुकर मन माझें रामपादांबुजीं हो।
सगुण गुण निजांगें नित्य रंगोनि राहो।
सकळ जन तरावे वंशाही उद्धरावे।
स्वजन जन करावे रामरूपीं भरावे ॥ ३॥

समर्थें दिल्हें सौख्य नाना परीचें।
सदा सर्वदा जाणसी अंतरीचें।
ळळे पाळिले तूं कृपाळु स्वभावें।
समर्था तुझें काय उत्तीर्ण व्हावें ॥ ४॥

युक्ति नाहीं बुद्धि नाहीं।
विद्या नाहीं विवंचितां।
नेणता भक्त मी तुझा।
बुद्धि दे रघुनायका ॥ ५॥

---

१ संसारतापको नष्ट करनेवाला। २ लालाइत हुआ। ३ बाढ़। ४ रामचन्द्रजी के चरण कमलों में। ५ स्वतः। ६ पार हो जाएँ। ७ रामरूपमें तल्लीन हो जाएँ। ८ प्यार किया। ९ विचार करने पर। १० अज्ञानी।

(७) भला तोचि जो मुख्य आचार राखे।
गुरु देव लौकीक वेदांसि धाके।
करूं ये वरें कर्म जें तें करीतो।
महावाक्य तत्त्वादिकें धीवरीतो ॥ १ ॥
वयें थोर ते थोरें भावार्थ नाहीं।
विकल्पें बुडाले अहंभाव डोहीं।
अहंता नसे हो तयां लेकुरांसी।
म्हणोनी बहू आवडी रामदासीं ॥ २ ॥

घाटी (पद्यका एक प्रकार)

जागा जागा धूर्त व्याधींच जागा।
लागा लागा भक्तिपंथेंचि लागा।
गा गा गा गा कीर्तनीं देव गा गा।
मागा मागा भाव देवासि मागा ॥ १ ॥
सेवा सेवा आदरें राम सेवा।
देवा देवा मी नसें तू चि देवा।
हेवां हेवा भक्तिचा फार हेवा।
रेवां रेवा साक्षपें काळें रेवा ॥ २ ॥

सवैय्या

खासिल, लेसिल, देसिल, घेसिल,
तेंचि तुला तितुके तरि भोगें[12]।
काळ चपेट लपेटित लाटित,
दाटित ते नव्हती तुज जोगें[13]।
कर्कश हाकुनि झोकुनि टाकुनि,
सारिति रे मनुजा तुज घोगें[14]
दास म्हणे हरिदास्य करीं तरि,
ध्रुव जसा न चळे वैरितो गे ॥ १[15]॥

---

१ व्यवहार। २ डरता है। ३ खोटे। ४ बुरी कल्पनामें। ५ दहमें। ६ सावधान हो जाओ। ७ चतुर। ८ तुरन्त। ९ मत्सर। १० बिताओ ११ समय। १२ भुगतना। १३ योग्य। १४ होए। १५ मिलता है।

पद. १७४४ (स. गा.) (राग समाज, धुमाळी)

आम्ही काय कुणाचें खातो । श्रीराम आम्हांला देतो ॥ धृ० ॥
बांधिले घुमट किल्ल्याचे तट । तयाला फुटती पिंपळवट ।
नाहीं विहीर आणी मोटे । घुडाला पाणी कोण पाजीतो ॥ श्रीराम०॥१॥
पहा पहा मातेचिये स्तनीं । चिंतितां मांस रक्त-मल धाणी ।
तयामध्ये विमल दुग्ध आणोनी । कोण घालीतो ॥ श्रीराम० ॥ २ ॥
खडक फोडितां सजिव रोडकी । पाहिली सर्वांनीं बेंडकी ।
सिंधु नसतां तिचे मुखीं पाणी । कोण पाजीतो ॥ श्रीराम० ॥ ३ ॥
पाण्याचे घुड घुडे । सदा सर्वदा गगन फोरंडे ।
दास म्हणे जीवन चहुंकडे । घालुनी सैंडे । पीक उगवीतो ॥ श्रीराम४।

हिन्दी पद. (१६५९ स. गा.) (राग पिलु)

जित देखो उत राम हि रामा । जित देखो उत पूरणकामा ॥ धृ० ॥
तृण तरूवर सैंतो सागर । जित देखो उत मोहन नागर ॥ १ ॥
जल थल काष्ठ पर्षाण अकाशा । चंद्र सूरज नच तेज प्रकाशा ॥२॥
मोरे मन मानस राम भजोरे । रामदास प्रभु ऐसो कियो रे ॥ ३ ॥

पद १७०७ (स. गा)
(राग काफी-दीपचंदी)

घट घट सांहिया रे । अजब अलामिया रे ॥ धृ० ॥
ये हिन्दु-मुसलमाना दोनों चलावे । पछाने सो भावे ॥ १ ॥
सुरिजनहार बड़ा करता है । कोई एक जाने पार ॥ २ ॥
अचल अखेर समझ दिवाने । अकलमंद पछाने ॥ ३ ॥
गरीवन काज बड़ा धनी है । बंदे फर्मीन कमीन ॥ ४ ॥

---

१ गोल और ऊँची छत । २ पिप्पल और बरगद । ३ चरसा । ४ मूलको ।
५ विचार करने पर । ६ गंदगी । ७ चट्टान । ८ दुबली । ९ मेंढकी । १० सूखा ।
११ पानी । १२ बौछार । १३ सात । १४ पाषाण ।

ललित पद १३३ (स. गा)

रघुराज के दरबार घमडी गाजतु है ॥ ध्रु ॥
तत्थै थै थै पखवाज बाजतु है। सुरवर मुनिवर देखन आवतु है ॥१॥
नारद तुंबर किन्नर सुरवर गावतु है। शंख भेरि सुनके राम थरकतु है ॥ २ ॥
लाल धुसर तबकै उडावतु है। रामदास तहां बलि जावतु है ॥ ३ ॥

स्वामीजीकी इच्छा।

रघूनाथदासा कल्याण व्हावें। अती सौख्य घ्यावें आनंदवावें।
उदेगें नासो पर शत्रु नासो। नाना विळासे मग तो विळासो ॥१॥

---

१ उद्वेग । २ नष्ट हो। ३ विलासोंसे । ४ शोभायमान हो।

"श्री समर्थांचें जगाचें निरीक्षण फार दांडगें होतें, हें सांगावयास नको. समाजाला सोडून कोठेंतरी डोळे मिटून बसावें असा त्यांचा संप्रदायच नव्हे. डोळे उघडे ठेवून सर्व कांहीं पहावें व त्यांतील सार तेवढेंच नेमकें घ्यावें असा त्यांचा दंडक होता."

(श्री शं. श्री. देव)

---

१ गहरा। २ बन्द करके। ३ ठीक। ४ बर्ताव का ढंग।

विविध

श्री समर्थ रामदास स्वामी

का

परिचय

१ शीघ्र गमन।
२ मित भाषण।
३ अधोदृष्टि।
४ ध्यानस्थ मुद्रा।
५ सिद्धासन।
६ फलाहार।
७ विभिन्न स्थानोंमें निवास।
८ वृत्ति उदासीन।
९ निःस्पृह।
१० विश्वकी चिन्ता।
११ शुद्ध आचरण

वाकेनिशी टिपण

स्मरणार्थ श्रेष्ठ व समर्थ यांचा जन्म होउन लीला श्री (कृ) ष्णातीरीं राहोन आनंत लिला केल्या ती चरित्रें भक्त मंडळींनी लिहून ठेविली (ली) आहेत ते वाकेनिसीस लिहिणें म्हणोन ।। दिवाकर गोसावी याणि सांगितल्यावरून अंताजी गोपाळ देशकुळकरणी परगणें कुडाळ तें हि लिहिले शके १६०३ दुर्मतीनाम संवत्सरे माघ व. १३ सौम्य वासरे तद्दिनें लिख्यते सूर्याजीपंत याचा जन्म जाला त्या दिवसा पासोन चरित्र जालेलें......

(१) सूर्याजीपंत याचा जन्म मौजे जांब प ।। अंबड येथें शालिवाहन शके १४९० या शकांत जन्म जाला पिता लहानपणी वारले उपासना श्री रघुपतीची चालउन श्री सूर्य आराधना करित आसता शके १५२५ माघ शु० ७ श्री सूर्यवर दोन पुत्र होतील मदंशे करून एक व मारुती अंशे करून एक पुढीलें संवत्सरीं श्रीनवमीच्या समारंभांत श्रीरघुपतीचे दर्शन होईल म्हणोन वर दिल्हा नंतर शके १५२६ क्रोधीनाम संवत्सर चैत्र शुद्ध आष्टमीस मध्यरात्रीं दूत येऊन मारुतीच्या देवालयांत सूर्याजीपंत यास नेलें तेथें श्रीरामलक्ष्मण उभयतांचे दर्शन होऊन अनुग्रह करून तांब्रमूर्ती च्यॉर देऊन दोघे पुत्र होउन मद उपासना जेष्ठ पुत्र श्रीगंगातीरी राहोन जगदोध्धार करील कृष्णातीरी कनिष्ठ राहोन जगदोध्धार करील म्हणोन वर देऊन अदृश्य जाले...

(२) श्रेष्ठाचा जन्म १५२७ विश्वावसुनाम संवत्तर मार्गशीर्ष शु. १३ जन्म जाला मातोश्रीनी नाव गंगाधर ठेविलें श्रीयेकनाथ स्वामीच्या दर्शनास मुलास घेउन गेले नाथ महाराजानी मुलाचे वर्णन करून नाव श्रेष्ठ ठेविलें बहुत आदरें करून निरोपें दिल्हा.

(३) श्रीचा जन्म शके १५३० कीलकनाम संवत्सरी चैत्र शुद्ध नवमी रामजन्म समई जन्म जाला त्यासही नाथ महाराजाच्या दर्शनास मानजी गोसावी बोंदलापुरीकर या मुद्धा पैठणास गेले नाथानी मुलाचे वर्णन बहुत

---

१ अवतार कृत्य। २ उन्होंने। ३ स्वर्गस्थ हो गये। ४ चार। ५ बिदा किया। ६ रामजन्म के समय।

श्री समर्थ रामदास स्वामी

का

परिचय

१ शीघ्र गमन।
२ मित भाषण।
३ अधोदृष्टि।
४ ध्यानस्थ मुद्रा।
५ सिद्धासन।
६ फलाहार।
७ विभिन्न स्थानोंमें निवास।
८ वृत्ति उदासीन।
९ निःस्पृह।
१० विश्वकी चिन्ता।
११ शुद्ध आचरण

वाकेनिशी टिपण

स्मरणार्थ श्रेष्ठ व समर्थ यांचा जन्म होउन लीला श्री (कृ) ष्णातीरीं राहोन आनंत लिला केल्या ती चरित्रें भक्त मंडळींनीं लिहून ठेविली (ली) आहेत ते वाकेनिसीस लिहिणें म्हणोन॥ दिवाकर गोसावी याणि सांगितल्यावरून अंताजी गोपाळ देशकुळकरणी परगणें कुडाळ तें हि लिहिले शके १६०३ दुर्मतीनाम संवत्सरे माघ व. १३ सौम्य वासरे तद्दिने लिख्यते सूर्याजीपंत याचा जन्म जाला त्या दिवसा पासोन चरित्र जालेंं......

(१) सूर्याजीपंत याचा जन्म मौजे जांव प॥ अंबड येथें शालिवाहन शके १४९० या शकांत जन्म जाला पिता ल्हानपणी वारले[1] उपासना श्री रघुपतीची चालउन श्री सूर्य आराधना करित आसता शके १५२५ माघ शु० ७ श्री सूर्यवर दोन पुत्र होतील मदंशे करून एक व मारुती अंशे करून एक युदीलें सवत्सरीं श्रीनवमीच्या समारंभांत श्रीरघुपतीचे दर्शन होईल म्हणोन वर दिल्हा नंतर शके १५२६ क्रोधीनाम संवत्सर चैत्र शुद्ध आष्टमीस मध्यरात्रीं दूत येऊन मारुतीच्या देवाल्यांत सूर्याजीपंत यास नेलें तेथें श्रीरामलक्ष्मण उभयतांचे दर्शन होऊन अनुग्रह करून तांब्रमूर्ती च्यौर[4] देऊन दोघे पुत्र होउन मद उपासना जेष्ठ पुत्र श्रीगंगातीरी राहोन जगदोत्धार करील कृष्णातीरी कनिष्ठ राहोन जगदोत्धार करील म्हणोन वर देऊन अदृश्य जाले...

(२) श्रेष्ठाचा जन्म १५२७ विश्वावसुनाम संवत्सर मार्गशीर्ष शु. १२ जन्म जाला मातोश्रीनी नाव गंगाधर ठेविलें श्रीयेकनाथ स्वामीच्या दर्शनास मुलास घेउन गेले नाथ महाराजानी मुलाचे वर्णन करून नाव श्रेष्ठ ठेविलें बहुत आदरें करून निरोपें दिल्हा.

(३) श्रीचा जन्म शके १५३० कीलकनाम संवत्सरी चैत्र शुद्ध नवमी रामजन्म समई[6] जन्म जाला त्यासही नाथ महाराजाच्या दर्शनास भानजी गोसावी बोंदलापुरीकर या सुदा पैठणास गेले नाथानी मुलाचे वर्णन बहुत

---

१ अवतार कृत्य। २ उन्होंने। ३ स्वर्गस्थ हो गये। ४ चार। ५ विदा किया। ६ रामजन्म के समय।

शेतील त्याचे नाव दशपुत्रे 'पडिलें हे चरित्र शके १५४५ रुधिरोद्गारीनाम संवत्सर वैशाख शुद्ध दशमीस समाप्त जाले बाईस प्रथम पुत्र जाला तो स्वामीस अर्पण केला त्याचे नाव उद्धव गोसावी.

(११) शके १५५४ पुष्पाचे गोष्टीचे चरित्र जालें.

(१२) शके मजुकुरी १५५४ आंगीरा नाम संवत्सर शिवनामा उत्पन्न जाला कृष्णातीरास जावे प्रदक्षिणा करून जातो म्हणोन गेले फाल्गुन मासी शुद्ध पक्षी...

(१३) बारा वर्षपर्यंत काशी हिमालयादि करून श्वेतबंदी जाउन बीभीषणाची भेटी घेउन प्र (द) क्षणेचे समई अनेक स्थळीं अनेक प्रकारची लीला केली त्याचा विस्तार उद्धव गोसावी लिहिलेले. पंचवटीस श्रीचे दर्शन करून श्रीकृष्णातीरी १५५६ आले–

(१४) शके १५५६ तारण नाम संवत्सरी महाबळेश्वरी श्रीमारुतीची स्थापना करून बाईस मारुतीची स्थापना करून माहुली संगमी व जरंड्यावर राहाणें तेथें जयरामस्वामी तुकाराम रंगनाथस्वामी रघुनाथस्वामी आनंदमूर्ती धरणीधर केशवस्वामी वामनस्वामी इत्यादिकांची दर्शनें जालीं त्या लीलेचा विस्तार अलाहिदा बाजीपंती लिहिले आहे.

पुरवणी २

(१५) श्रीकृष्णातीरी शिष्यसांप्रदाय शाहापुरकर इत्यादि मंडळी आका वेणुबाई आंबाजी चाफळी नरसो मल्लनाथ भानजी गोसावी आदिकरून सांप्रदायी जाले शिरगावीं आंबाजीचे मातुश्रीस व बंधूस तेथें ठेउन टाकळीहुन उद्धवास आणविले शके ११६७ पार्थीव सवत्सरी श्रीच्या नवमीच्या उत्साहास प्रारंभ केला त्या उत्साहात आंबाजीचे नाव कल्याण म्हणोन फांदी तोडल्यामुळे पडिलें त्याच सालीं वीहिरीतें भीमाजी बावास अनुग्रह जाला हें चरित्र मसुर मुकामी जाले तपशील आलाहिदा लिहिले आहे...

---

१ सेतु बंध की यात्रा करके। २ लिखा है। ३ कुवेमें।

(१६) शके १५६९ येकोणहातरीत आंगापुरचें डोहातुन मूर्त आणली शके १५७० सर्वधारिनाम संवत्सरी उत्साहास प्रारंभ चाफळी जाहला.

(१७) आकरा मारुतीची स्थापना शके १५६७ पासुन १५७२ पर्यंत आकरा मुर्तिंची स्थापना कारणेंपरत्वें जाहल्या त्या वेणुबाइनी चरित्र वर्णिले आहे डोळेगावचे मारुती सुध्दा...

(१८) शिवाजी माहाराज यास आनुग्रह शके १५७१ शिंगणवाडीचे बागेंत वैशाख शुध्द नवमी गुरुवारी जाला वरकड शिवछत्रपती प्रकरण आलाहिदा लिहिले आहे..:

(१९) शके १५७१ ज्येष्टमास कड्यात भोजनास घाते (ले) व तुकाराम याजकडे पाठउन तेथे भोजनास घालविलें हे चरित्र जाहले.

(२०) पंढरीस गेल्याचे चरित्र शके १५७१ आषाढमासी जाहाले

(२१) परळीस नेहमी राहाणे शके १५७२[1] विकृतीनाम संवत्सर

(२२) शके १५७३ त्र्याहातरीत विड्यांची गोष्ट जाहाली खर संवत्सर वैशाख मास

(२३) शके १५७३ त्र्याहातरी रंगनाथस्वामी याचे चरित्र रेड्याची गोष्ट जाली.....

(२४) शके १५७४ लुपाचे घागरीचे चरित्र नंदन नाम संवत्सर चैत्र शुध्द १० दशमीस जांवेत जाहालें मावापुरास जाऊन पंचाहत्तरीत सारंगपुरचे मारुतीचे चरित्र होऊन शाहातरीत कृष्णातीरी आले.

(२५) वेणुबाईस श्री रघुपतीनी गळ्यांत माळ घातली शके १५७६ चरित्र.

(२६) शके १५७७ येकनाथपंत याचे चरित्र जाहाले याच शकांत वैशाख शुद्ध द्वितीयेस शिवाजीमहाराज याणी झोळींत चिठी टाकली मन्मथनाम संवत्सर याच साली रामेश्वरास स्वारी गेली चंदावरी येंकोजी राजे यास कार्तिक मासी आनुग्रह जाहाला वेणुबाईस मिरजेस याच शकांत ठेवीलें...

(२७) शके १५७८ या शकांत कोहिनेरें[2] स्वामी बुडाल्याचे चरित्र श्रावण-

---

[1] कारणवश। [2] कोयना नदीमें।

मासी याच शकांत माघ वद्य प्रतिपदेस वडगावी रंगनाथस्वामी याचा घोडा उठविला याचे चरित्र. जाहाजाचे चरित्र याच साली...

(२८) शके १५७७ जेष्ठ शुध तृतीया प्रातःकाळी परळीहून जांबेस मातुश्रीचे आंतकाळी गेल्याचे चरित्र याच शकांत कल्याण गोसावी यास तोडतो म्हणून धाविले ते चरित्र...

(२९) शके १५७९ चैत्र वद्यात निरंज(न) स्वामीची गोष्ट व त्यास आनुग्रह माघ शुध चतुर्थीस हे चरित्र जाहाले

(३०) शके १५८० हुरड्याची गोष्ट मौजे देहगावी जाहाली वीलंबी संवत्सर याच शकात शीतज्वराची गोष्ट व सदाशिव शास्त्री याची गोष्ट या शकांत चरित्रे जाली

(३१) शके १५८१ विकारी संवत्सरी श्रेष्ठाचे दर्शनास शिवछत्रपती जांबेस गेले होते.

(३२) उत्धव गोसावी यानी कीर्तन केले चाफळी श्रीपुढे मागे मारुतीनी टाळ वाजविला[1] हे चरित्र शके १५८२ शार्वरी संवत्सरी चैत्र वद्य ५ ला जें(जाले)

(३३) ब्रह्मनाली समर्थ गेले होते तेथे रघुनाथ स्वामीचे वृंदावन डोलले शके १५८८ पराभव संवत्सर आश्वीन शुद्ध दशमीस चरित्र जाले—

(३४) शके १५९५ प्रमादि संवत्सरी शिवछत्रपती कर्नाटकांत स्वारीस गेले तेथे तपश्चर्येस राहावे म्हणोन बोलीले याचे चरित्र आलाहिदा आहे—

(३५) सिंव्हासनाधीश्वर शिवछत्रपती यास राज्याभिषेक १५९६ आनंद नाम संवत्सर ज्येष्ठ शुध त्रयोदशी समारंभ जाला नंतर सज्जनगडी माहाराज येउन दीड मास श्री पासी समारंभ बहुत ब्राह्मण भोजन इत्यादि जाले याचा तपसील बाजीपंत याणी लिहिला आहे...

(३६) श्रेष्ठ परंधामाप्रति गेले हे चरित्र १५९९ पिंगल नाम संवत्सर फाल्गुण वद्य त्रयोदशी मौजे दहिफळ बु॥ परगणे देवली माध्यान्ही परंधामा प्रति गेले आमावास्येस पार्वतीबाई परंधामाप्रति गेली हे चरित्र व श्रेष्ठाचे

---

[1] करताल बजाया ।

आजन्म पर्यंत जालेले त्रिंबक गोसावी मठ भालगांव याणी लिहा वर्णिलेले आहे...

(३७) शके १६०० काळयुक्ताक्षी संवत्सर रामचंद्रबावा शामजीबावा यास वैशाख मासी जांबेहुन दर्शनास आणिले संवत्सर पर्यंत होते श्री देवीच्या दर्शनास प्रतापगडास स्वामी गेले ज्येष्ठमास वेणुबाई आषाढ वद्य नवमीस परंधामाप्रति गेली.

चैत्र वद्य चतुर्दशीस वेणुबाई परंधामास गेली येंकोजीराजे याणि समर्थास चंदावरास घेऊन गेले त्या काळीं मल्हार निंबदेव येलुरकर यास मुर्ति [१] चवदा मणाच्या तयार करावयास सांगोन आले आश्विन शु ॥ दशमीचे. दिवशी पत्र करून स्वामीपासी ठेविले कल्याण गोसावी यास डोमगावास रवाना मार्गशीर्ष मासी केले हिं चरित्रें सोयळाशात जाली भक्तमंडळीनी चरित्रे आलाहिदा लेहुन ठेवीलीली आहेत......

(३८) शके १६०१ सित्धार्थी संवत्सरी पौष शुद्ध नवमीस आले ते माघ शुध्द पौर्णिमेपर्यंत होते नित्य नित्य समारंभहि त्या काळा ,बहुत केला समर्थ निरोप देते समईं अनेक प्रकारच्या राजधानी संमंधे सांगोन अध्यात्मपर विषयहि श्रीनी सांगितला तीन दिवस समाधी लागोन राजश्री बसले होते नंतर समाधि उत्थापन करून पुन्हा अनेक प्रकारच्या गोष्टी होऊन त्यात परंधामास जाणार हे समर्थानी सुचविले माघ शुद्ध पौर्णिमेस राजश्री अज्ञा घेउन रायगडास गेले राजश्री गेल्यानंतर उत्धव गोसावी याणी विनंती केली राजश्रीस अवकाश थोडा राहिला आपल्या त्याच्या भाषणांत उमजलो किती अवकाश राहिला तो स्वामीनी स्वमुखें अज्ञा करावी बाबा आजपासून साठ दिवसाचा अवकाश आहे म्हणोन अज्ञा जाहली हे सविस्तर चरित्र उत्धव गोसावी याणी लेहुन ठेविले आहे राजश्री परंधामाप्रति गेले शके १६०२ रौद्रनाम संवत्सर चैत्र शुद्ध पौर्णिमा रविवारी.

(३९) राजश्री परंधामास गेल्यानंतर श्री पर्यटण करावयाचे टाकिलें वैशाखमासी राजश्रीनी गुत (न)ग्रह केलें त्यांत वैशाखमासी प्रवेश केला राजश्री शंभुछत्रपती दर्शनास रामचंद्रपंत सुत्या जेष्ठमासी दर्शनास घेऊन आठ

---

१ समय। २ घूमना।

दिवस राहोन अशा घेउन गेले नंतर आणखी काहीं चरित्रे जालि ती भच मडळीनी लेहुन ठेवीली आहेत माघ शुद्ध आष्टमीस मल्हारि निंबदेव व केशव गोसावी याणी मुर्ती चदावरहुन घेउन आले नतर माघ वद्य पचमीस मुर्तीची पुजा समर्थांनी करुन पाच दिवसाचा आवकाश म्हणोन भक्त मडळीस अशा केली त्या काळचे भाषणे जी जी जाहाली ती भच मडळीनी व दिवाकर गोसावी याणि आल्हादिदा लेहुन ठेविली आहेत श्री परधामाप्रति शके १६०३ दुर्मती नाम सवत्सरी माघ वद्य नवमीस शनवारी गेले अनेक प्रकारची चरित्रें श्रीनी केली त्याचा आतें नाहीं तथापि भच मडळीनी काहीं काहीं लेहुन ठेविली आहेत दिवाकर गोसावी याणि अनाजी गोपाळ यांक्नीस कुडाळकर यास लेहुन ठेवायास सागितले त्या प्रतीवरुन गोपाळ अनाजी शाहापुरकरी लिहिले मिति फाल्गुन शुद्ध पचमीस लिहिले असे..

(सा. वि. वि. प्र. स.)

संभाजीराजास उपदेश

पुढें पौष व॥ ९ स शभू छत्रपति हे श्री समर्थांचे भेटीस श्री सज्जनगड मुद्दाम आले होते या भेटीचे समयीं श्री समर्थांनी सभाजी राजास कृपापूर्वक सागितलें कीं.—

श्री—शिवराज याचे वशपरपरेसी राज्य भोग बहुत आहे.

म—पाच वर्षे पर्यंत अति कठीण आहे, दैवी प्रार्थना सावधानतेनें रक्षिलें पाहिजे

त—पूर्वी शिवरायास राजधर्म, क्षात्रधर्म, व अखड सावधान अशीं प्रकरणें सागितलीं होतीं, तीं प्रसगानुसार वाचून मनाँसि आँणून वर्तणूक होईल तरी त्य वचनाचा अभिमान श्री देवासी आहे

यो—नळसवत्सरीं (श १५९८) शिवथरीं शिवरायास अठरा शक समर्पिलीं ते समयीं श्रीचे इच्छेनें त्यास कित्येक आसिर्वाद वचन प्राप्त झालीं तो अर्थ काहीं घडला असेल आणि काहीं द्वादश वर्षांनतर उत्कट भाग्य आहे ते समर्थीचा सक्ल्प लेखी होता त्याचें स्मरण मात्र असो द्यावें. कोणे समय कोणास काय घडणार तें सुखें घडेल.

१ अन्त.। २, मल्हारी रवकर.। ३ शनवार.।

गो—संभाजी राजानीं जे वस्त्र पात्रादिक पदार्थ श्री समर्थास अर्पण केले त्या विषयीं अशी आज्ञा जाली कीं प्रसंगोपात चाफळचें देवालय दुरुस्त करावे लागेल, त्या कामीं हे पदार्थ संभाजी राजांच्या विचारें उपयोगांत आणावे अथवा महाद्वारीं दीपमाळा कराव्या.

श्व—प्रमादी संवत्सरी (शके १५९९) सिंगणवाडीचे मठीं शिरराया़नीं श्रींच्या सर्व कार्याचा आईकार केला. त्याप्रमाणें त्यांनीं नित्य उत्सव व यात्रा समारंभ चालविला. पुढें इमारतीचेंही स्मरण असो द्यावें.

र—श्रींच्या भोगमूर्ति आणविल्या त्यांची प्रतिष्ठा मल्हारी निंबदेव यांचे बंधूच्या हस्तें करावी.

रा—कर्नाटकी पद्धतीचा रथ करून या भोगमूर्ति त्यांत ठेवून प्रतिवर्षी रथोत्सव केल्यानें राज्याशी कल्याण आहे विशेष चिन्ह दिसोन येईल त्या उपरी श्रींचे इमारतीस आरंभ करावा व १२१ खंडी धान्य संकल्पाची गती सांगावी.

म—श्रींचे देवालय अशक्त जालें, नदी सन्निध आहे.

दा—प्रतिवर्षीं श्रींचे यात्रेसी येक भले मनुष्य संरक्षणासी पाठवीत जावे व रथोत्सवादि समारंभ समयीं २ हत्ती, २ कर्णे, २ वाद्यें जोड, २ तिवासे, २ जमदाने व २ शामिने पाठवून श्रींचा यात्रा समारंभ संपादून हे पदार्थ परत न्यावे.

स—श्रींचे पेठेचें दस्य करावे कार्यकर्ते नीति[3] वर्दोवी श्री कार्यासी अति तत्पर ऐशा पुरुषाच्या योगें धर्मवृद्धि आहे व धर्मवृद्धिनें राज्य वृद्धि आहे.

(रा. गा. पृ. १४६-१४८)

---

१ अवसरानुकूल। २ अंगीकार किया। ३ नीति का अवलम्बन करे।

समर्थ संप्रदाय

किसी मतके अनुयायियोंकी मण्डलीको सप्रदाय कहा जाता है। आजतक महाराष्ट्रमें जितने भी सप्रदाय हुए उनमें 'समर्थ सप्रदाय' को भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ था। स्वामीजी श्री रामचन्द्रजी को 'समर्थ' कहा करते थे। धीरे धीरे स्वामीजीके अनुयायी स्वामीजी को ही 'समर्थ' नामसे सम्बोधित करने लगे। इसलिए स्वामीजीके मतके अनुयायियोंको 'समर्थ या रामदासी सप्रदाय' नाम मिला। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ तुकाराम आदि सन्त जैसे भागवत (या वैष्णव) धर्मके समर्थक थे वैसेही श्री समर्थ रामदास स्वामी भी भागवत धर्मके समर्थक थे। अन्तर इतनाही था कि ज्ञानेश्वरादि सन्त 'वारकरी' सप्रदायके थे और श्री समर्थ रामदास स्वामी 'समर्थ' सप्रदायके प्रवर्तक थे। वस्तुत दोनोका मूल स्रोत भागवत धर्म ही है। भागवत धर्ममें विवेक और नीतिको प्रमुख स्थान दिया जाता है।

वारकरी सप्रदायका लक्ष्य आध्यात्मिक और नैतिक उन्नतिकी ओर ही था। इस आन्दोलनसे सामान्य स्तरके लोगोको विश्वास उत्पन्न हुआ कि इस सप्रदायके अनुयायी बननेसे सासारिक दु खोंको वे आसानीसे भूल सकें। इसमें स्त्री और शूद्रादिकोको भी मोक्ष प्राप्त करनेके लिए गुंजाइश थी। इस सप्रदायने उनके नि सार जीवनमें एक महान आशा उत्पन्न की। वे पाखण्डियोकी अनुदार वृत्तिका सामना करनेमें समर्थ हुए। वारकरी सप्रदाय की यही एक सुधारणामूलक प्रवृत्ति थी। किन्तु सर्वसाधारण प्रवृत्ति निवृत्तिपर ही रही। इन सन्तोका कार्य सामाजिक दृष्टिसे बडा व्यापक था इसमें सन्देह नही।

रामदास स्वामीके समय देशकाल परिस्थिति तीव्रतर और विकट होती गई और व्यवहारधर्म की ओर लोगोका लक्ष्य आकृष्ट करनेके सिवा दूसरा कोई चारा नही था। उस समयकी राजकीय, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितिका चित्र हमें दासबोधके तीसरे दशकमें और अन्यत्र मिलता है। वारकरी सप्रदायमें व्यवहारको गौण स्थान दिया जाता था। स्वामीजीने पूर्ववर्ती अर्थात् ज्ञानेश्वर आदि सन्तोंके उपासना मार्ग को लेकर व्यवहारधर्म का भी प्रसार किया। आप कहते हैं —

"उपासनेला दृढ चालवावें। भूदेव संतांसि सदा लवावें।
सत्कर्म योगें वय घालवावें। सर्वांमुखीं मंगल बोलवावें ॥१॥

अर्थात् उपासना को दृढता के साथ चालू रखना चाहिए, ब्राह्मण और सन्तोंका हमेशा आदर करना चाहिए, सत्कर्म करके आयु बितानी चाहिए और सब लोगोंके मुखसे मङ्गलदायक धन्यवाद प्राप्त करना चाहिए।"

इससे यह प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती संतोंकी प्रणाली को लेकर ही स्वामीजीने अपना संप्रदाय खड़ा किया। ज्ञानेश्वरजी के पश्चात् २००–२५० वर्षतक भागवत धर्म लुप्तप्राय सा हो गया था। एकनाथ महाराजने, प्रपंच–परमार्थ के समन्वय के द्वारा लोगों में जागृति उत्पन्न की। तत् पश्चात् उसी भक्तिमार्गके प्रचार के द्वारा तुकारामने वारकरी संप्रदाय को पुनः जीवन देकर पुष्ट किया और अखिल समाजको धर्म-नीतिका उपदेश दिया।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी कार्यक्षमता इस धर्म–नीतिके उपदेश के बावजूद भी नष्ट हो चली थी। व्यवहार-धर्म को ठीक करने के बजाय अब दूसरा कोई सहारा नहीं था। इसलिए स्वामीजीने उपासना मार्ग को व्यवहार-धर्मका साथ देकर लोगोंको कार्यप्रवण किया। उन्होंने अपने उपास्य श्री रामचन्द्रजीका आदर्श और उज्ज्वल चरित्र जनताके सामने रखकर उसे प्रतिकारक्षम बनाया। यही वह भागवत धर्म का दूसरा रूप 'महाराष्ट्रधर्म, अर्थात् वेदविहित धर्म है। इससे स्वसंरक्षण तथा मोक्ष प्राप्ति का आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ।

स्वामीजीने सांप्रदायियोंका दैनंदिन कार्यक्रम अच्छा बनानेके लिए महान प्रयास किया। संप्रदायकी कार्य–प्रणाली बना ली। कार्य–प्रणालीके सामान्यतः बीस लक्षण माने गये हैं। जैसे 'प्रथम लिहीणें दुसरें वाचणें'...आदि (म. सं. पृ. २१३)। १ लिखना, २ पढ़ना, ३ अर्थ लगाना, ४ आशङ्का निवृत्ति, ५ अनुभव, ६ गाना, ७ नाचना, ८ ताली बजाना, ९ अर्थ भेद, १० प्रबंध-रचना, ११ प्रबोध, १२ वैराग्य, १३ विवेक, १४ दूसरोंको संतुष्ट रखना, १५ राजकारण, १६ अव्यग्रता (एकाग्रता), १७ कालमान और प्रसंग जानना, १८ उदासीनता, १९ समाधान, २० रामोपासना। सारांश, मानवताकी

उन्नतिके लिए परोपकार, स्वधर्मपालन, व्यवहारक्षमता और भक्तिके तत्पर संसारके मायाजालको तोड़ना, इस सम्प्रदायका सार है।

वारकरी और समर्थ सम्प्रदायके तत्त्व मूलत एकही थे। जैसे -(१) दोनों सम्प्रदाय वैदिक। (२) अद्वैत सिद्धान्तके समर्थक किन्तु उपासनाको महत्त्व देनेवाले (३) वर्णाश्रम धर्म को माननेवाले (४) मूर्तिपूजक (५) पाखण्डियों का निषेध करनेवाले (६) लोकसंग्रह करनेवाले (७) हरि और हर में भिन्नता न माननेवाले थे, किन्तु समर्थ सम्प्रदाय में मठों और महन्तोंकी विशेष व्यवस्था थी, जो वारकरी सम्प्रदाय में नहीं थी। ऐसी व्यवस्थाका उद्देश्य यही दिखाई देता है कि शिष्य सम्प्रदाय में वृद्धि हो, एकही कार्यप्रणाली में अधिक जनसमूह इकट्ठा हो तथा प्रत्येक व्यक्ति को सर्वांगीण और आदर्श शिक्षा मिले।

श्री दासबोध के बारहवें दशक के नौवें समास (ओ ८ से २९) में स्वामीजीने दैनंदिन कार्यका संक्षिप्त ब्योरा दिया है जिससे समर्थ साम्प्रदायियों के हररोज के व्यवहार की पूरी कल्पना की जा सकती है। अन्यत्र वे ही बातें दूसरे रूप में मिलती हैं। उपर्युक्त बीस लक्षण भी इस कार्यक्रम से मिलते जुलते हैं। एवञ्च सम्प्रदाय का ध्येय, उपासना के द्वारा निःस्पृहतासे लोकसंग्रह करके भक्तिमें वृद्धि करना तथा उन्हें अन्न, वस्त्र द्रव्य आदिके द्वारा सतुष्ट करना ही था। चाफलका राम मंदिर इसका प्रमाण है ग्यारह स्थानोंमें मारुति के ग्यारह मन्दिर बनवाये जानेके कालमें शिष्य सम्प्रदाय बहुत ही बढ गया था। इसमें कुलकर्णी, देशपाडे आदि राजकाजमें हिस्सा लेनेवाले अधिकारी लोग थे। ये सब शिष्य और प्रत्यक्ष शिवाजी महाराज भी सम्प्रदायके उपर्युक्त नियमोंका कडा पालन करते थे। उपर्युक्त समास का प्रारम्भिक अंश और उस के पिछले समासका अन्तिम अंश पढनेसे यह ज्ञात होता है कि स्वामीजीने धर्मस्थापनाके लिए वैसेही उस समयकी लोगोंकी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक दुबली परिस्थिति मिटाने तथा ईश्वर प्राप्तिका अन्तिम लक्ष्य साध्य करने के लिए अपना अलग सम्प्रदाय खडा किया। बालोंसे वृद्ध स्त्री-पुरुषोंतक सभीको कडी परीक्षा देनेके बाद इस सम्प्रदायमें प्रवेश मिलता था। चरित्र खण्डमें स्वामीजीके कडे अनुशासन का उदाहरण हमें मिलता है। (पृ ६८) आक्का और वेणुबाई इन

बालविधवाओंकी कड़ी परीक्षा उन्हें संप्रदायमें प्रविष्ट करनेके पूर्व स्वामीजीने की थी। उन्हें स्त्री निन्दा वर्ज्य थी। स्त्रियोंका जीवन परमार्थ के द्वारा सफल हो इसलिए उन्होंने कर्मठ लोगोंकी टीका टिप्पणियोंकी ओर ध्यान न देकर उनकी मदद की। स्वामीजीकी दृष्टि समता को लिए हुए और सुधारणामूलक थी। वे वर्णाश्रम धर्मके कट्टर अनुयायी थे, किन्तु पाखण्डी और कर्मठ नहीं थे। इन सभी दृष्टियोंसे स्वामीजी के कार्यका स्वरूप मौलिक था। स्वामीजीमें युक्ति-बुद्धि-चातुर्यकी विशेषता थी। उस समयकी विशिष्ट परिस्थितिका मुकाबला करनेमें स्वामीजी समर्थ हुए। यद्यपि वे निवृत्ति परक सन्त थे तथापि वे निष्क्रियताको नहीं चाहते थे। यत्नको वे देवता स्वरूप समझते थे। अपने संप्रदायके द्वारा लोगोंका शैथिल्य तथा उनकी स्वाभिमानशून्यता नष्ट करके स्वामीजीने समाजका पुनरुज्जीवन किया, इसमें सन्देह नहीं। इसके आगे स्वामीजीके मुख्य मठोंकी सामान्य जानकारी दी जाती है।

श्री समर्थ मंदिर, जाम्ब।

निजामके राज्यमें परतूर स्टेशनसे १४ मीलकी दूरीपर औरंगाबाद जिलेमें जाम्ब गाँव है। श्री समर्थ रामदास स्वामीकी यह जन्मभूमि है। इसलिए जिस गृहमें उनका जन्म हुआ था उसी पवित्र भूमिपर उनके भक्तोंने उनकी स्मृतिमें एक सुन्दर मंदिर बनवाया। उसका उद्घाटन समारोह चाफल मठाधिपति आबा महाराजके द्वारा शक १८५४ के (सं. १९८९) रामनौमी के दिन हुआ। इसके बनवानेका सारा भार सुप्रसिद्ध समर्थभक्त श्री शंकर श्रीकृष्ण देवजीने सम्हाला। महाराष्ट्र तथा बृहन्महाराष्ट्रसे उन्होंने ४०००० रुपयेका चन्दा बड़े यत्नके साथ जमा किया। औंध (सतारा) रियासतके अधिपति स्व. बालासाहब पंत प्रतिनिधिके निरीक्षणमें समर्थ मूर्ति बनवायी गई। जाम्ब, चाफल (सतारा) मठाधिपतिके अधिकारमें ईनामके रूपमें है। आमदनी करीब ५००० रु. है। पूजा आदि की व्यवस्था चाफल मठाधिपति करते हैं। जिस वृक्षके ऊपरसे रामदासजी नदीके दहमें कूद पड़े थे वह वृक्ष, यहाँ आज भी मौजूद है। उस वृक्षके पासमें ही श्रेष्ठके पुत्र रामजी और शामजी की समाधियाँ हैं। सूर्याजीपन्त के खेतको आजकल 'देवमळा'

कहते हैं। जिस गागरसे रामनौमी के समारोहमें स्वामीजीने घी परोसा था वह गागर भी यहाँ आजकल मौजूद है। **यहाँ एक मठ भी है।** स्वामीजी के कुल देवता 'मुंजाबा' का स्थान यहाँसे चार मील की दूरीपर हिवरे नामक गाँवमें है और चौबीस मील की दूरीपर 'लिंबगांव' नामक ग्राममें इनके विद्यमान वंशज मनोहर बाबा ठोसर रहते हैं।

चाफल मठ

(महंत समर्थ)

चाफल गाँव सतारा जिलेके पाठण तहसील में है। एम. एस. एम. रेल्वे के मसूर स्टेशनसे दस मील की दूरीपर है। चाफल मठाधिपति को यह गाँव जागीर के रूपमें दिया गया है। यहाँ आजकल रामनौमी का समारोह बड़े शानसे मनाया जाता है। स्वामीजीने जो उत्सव की व्यवस्था की थी तदनुसार उन शिष्यों के वंशज अब भी स्वामीजी का दिया हुआ काम करनेके लिए डाहापूर, अंगापूर,, शिराला आदि गाँवोंसे आते हैं। आध मील की दूरीपर शिगणवाडीमें श्री हनुमानजी का स्थान है। जिस इमली के वृक्षके नीचे शिगणवाडी में शिवाजी पर अनुग्रह किया गया था वह वृक्ष आज भी मौजूद है। वह अब अत्यंत जीर्ण हो गया है। कहते हैं कि देवगिरिके यादव वंशके वीर 'सिंघण' के नामपर ही इस शिगणवाडी का नामकरण किया गया है। चाफलसे चार मीलकी दूरीपर स्वामीजी की प्रसिद्ध 'रामघळ' नामक गुहा है जिसके दो मंजील हैं। पासमें 'कुबडीतीर्थ' नामक झरना है। इसका जल मधुर है। यह झरना रायगड और चाफलके मार्गमें है। यहाँ कभी कभी पुष्पवाटिकामें शिव-समर्थ भेंट हुवा करती थी। जिस शिलापर स्वामीजी बैठा करते थे उसे 'वहिरू महाराचा धोंडा' कहा जाता है।

सज्जनगड मठ

(महंत समर्थ)

यहाँ स्वामीजी की समाधि है। यहाँसे परली पौन मील की दूरीपर है जहाँ केदारेश्वरका एक पुराना हेमाडपन्ती मन्दिर है। यहाँ प्रत्येक वर्ष माघ कृ. ४ से ९.तक दासनौमी का समारोह हुआ करता है। समाधि की ओर जानेके

लिए रास्ता बहुत छोटा है, क्यों कि वह भूगर्भ गृहमें है। राम मन्दिरमें श्री रामचन्द्रजीकी मूर्तिके नीचे की ओर समाधि है। पासमें स्वामीजीके पादुका, कुबड़ी और काठी है। मन्दिर की दक्षिणमें शेजघर (शयनागार) है। उसमें स्वामीजीकी शिवाजी महाराजकी दी हुई गुप्ती (एक हथियार) है जो छः फीटसे भी अधिक लम्बी है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि स्वामीजी छः फीटसे अधिक ऊँचे थे। यहाँ शिवाजीका दिया हुआ पलंग भी है। स्वामीजीकी तसवीर, पीकदान और जल पीनेका तुम्बा भी यहाँ उपस्थित है। उरमोडी नामक नदीसे कल्याण स्वामी जिन दो हंडोमें पानी लाते थे वे भी यहाँ हैं। बाईं ओर (स्वामीजीको अंगापूर के दहमें राममूर्तिके साथ मिली हुई मूर्ति) 'अंगलाई' का मन्दिर है। हालही में अर्थात् सं. २००६ में सजनगडके मन्दिरोंकी अच्छी मरम्मत की गई है जिसका पुण्यफल श्री दां. श्री. देव आदि अनेक सज्जनोंको है।

सुन्दर मठ

(महंत समर्थ)

यह मठ रायगड के पास शिवथरमें है। यहासे प्रतापगडकी 'रामवर-दायिनी' विश्वमाता देवी नजदीक है। इसमें श्रीरघुनाथजीका सुन्दर मन्दिर है। यह स्थान ऊँचे पहाड़ोंमें है। वहाँ जानेमें डर लगता है।

टाकली मठ (नासिक)

(महंत उद्धव स्वामी)

यह सबसे पहला मठ है। नासिक पंचवटीसे टाकली तीन मील दूर है। यहाँ नन्दिनी (नासर्डी) और गोदावरी नदियोंका संगम है। स्वामीजीकी यह तपोभूमि है। इस मठकी परम्परा ब्रह्मचारी शिष्योंकी है।

इन्दूर बोधन (मठ)

(महंत उद्धव स्वामी)

यह मठ गोदावरी नदीके पश्चिम में है। मठ की स्थापना के समय यह गाँव गोवलकोंडा राज्य के अन्तर्गत था। अब यह निजामों के अन्तर्गत है।

इसे आजकल 'निजामाबाद' कहते हैं। यहाँ कोदडपाणि श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति है। मूल मठ को 'सारंगपूर' मठ कहा जाता है जो यहाँसे तीन मील की दूरीपर हनुमानजी के मन्दिर के पास है। यह स्थान रमणीय और शान्त है। परम्परा ब्रह्मचारी शिष्योंकी है।

तंजावर मठ

(महंत भीम स्वामी)

यहाँ कुल पाँच मठ हैं। उनमें भीम स्वामी के शिष्यों के तीन और अनन्त मौनी (समर्थ शिष्य) की परम्पराका 'सेतुराम' नामका एक मठ है। भीम स्वामीका हस्तलिखित दासबोध यहाँ मिलता है। ग्यारह वस्त्रोंमें यह पोथी बाँधी हुई है। प्रसिद्ध कवि रघुनाथ पण्डित, आनन्दतनय, गोसावीनदन, माधव स्वामी आदि तजावर मठ के ही हैं।

डोमगांव मठ

(महंत कल्याण स्वामी)

डोमगाव सीना नदीके किनारेपर है। मठ पहाडमें है। कल्याण स्वामी चार महीने डोणज गावमें, चार महीने डोमगावमें और चार महीने परडामें रहते थे। स्वामीजीकी अधिकाश कविता इसी मठमें मिली है। किन्तु अब यह 'सत्कार्योत्तेजक सभा' धुले (कान्हदेश) में ली गई है। कल्याण स्वामीकी दासबोधकी हस्तलिखित प्रति इसी मठमें है। कल्याण स्वामीको दिया हुआ अक्षरका नमूना यहाँ अब भी मौजूद है। वह सुनहली स्याहीसे बाल्बोध देवनागरी लिपिमें लिखा हुआ है। यहाँ कल्याण स्वामीका लाल रगके बनाती वस्त्रका टुकडा और उसी रगका एक पुराना बटुआ, समर्थ की पादुकाएँ, स्वामीजीकी कल्याणको दी हुई राम, लक्ष्मण, सीता और मारुतीकी मूर्तियाँ मिलती हैं।

यहाँ कल्याण स्वामीकी समाधि है। समाधिपर शिवजीकी पिंडी और पादुकाएँ हैं।

शिरगांव मठ

(महंत दत्तात्रय स्वामी)

शिरगांव सतारा जिलेके कराड तहसीलमें एक छोटासा गाँव है। यह चापलसे नजदीक है। यहाँ भूगर्भ गृहमें स्वामीजीकी ध्यान करनेकी जगह है। मठमें स्वामीजी के द्वारा स्थापित हनुमानजी की छोटी मूर्ति है। स्वामीजी की दो तसवीरें भी हैं। यहाँ दत्तात्रय स्वामीकी समाधि है। मठमें पूजा आदि नित्यकर्म अब भी चालू है।

कण्हेरी मठ

(महंत वासुदेव स्वामी)

कण्हेरी सतारा जिलेके वाई तहसीलमें है। यहाँ एक हनुमानजी का बड़ा मन्दिर है। सं १७२८ (शक १५९३) में शिवाजी महाराज की दी हुई सनद यहाँ मिलती है। पासमें दूसरे भी कई मठ हैं। वासुदेव स्वामी की समाधि इसी मठमें है।

तिसगांव मठ

(महंत दिनकर स्वामी)

स्वामीजीने दिनकर स्वामीको यहाँके मठाधिपति बनाया। स्वामीजीने मठमें श्री रामचन्द्रजी की मूर्ति स्थापित की। स्थापनाके पश्चात् प्रत्येक वर्ष रामनौमी का समारोह मनाना प्रारम्भ हुआ।

आख्यायिकाएँ ।

एकनाथजी का आशीर्वाद ।

पुराने चरित्र ग्रन्थोंमें इस प्रकार एक आख्यायिका मिलती है कि जब नारायण (रामदास) की उम्र एक वर्षकी हुई तब पिताजीका विचार हुआ कि श्री एकनाथजीके चरणोंपर नारायणको अर्पित किया जाय। पिताजी प्राय प्रतिवर्ष पैठण जाते थे। दोनों बालकको लेकर सूर्याजीपन्त और उनकी पत्नी राणूबाई पैठण गये। प्रथम पुत्रको पहलेही आशीर्वाद मिला था। उसका नाम 'श्रेष्ठ' रखा गया था। एकनाथजीने द्वितीय पुत्रको आशीर्वाद देकर कहा कि यह छोटा बालक श्री हनुमानजीका अवतार है और मेरा अधूरा काम पूरा करेगा। यह सुनकर माता पिताको प्रसन्नता हुई। श्री एकनाथ महाराजकी वन्दना करके सूर्याजीपन्त अपने परिवारके साथ पैठणसे लौट आये।

छाछका प्रबन्ध ।

एक समय, दूसरे दिन होनेवाले ब्राह्मण भोजन के लिए छाछका प्रबन्ध करनेको उनकी माताने नारायणसे कहा था किन्तु फिरसे नारायणको याद दिलानेके लिए माता भूल गई। रात्रिमें सहसा उनको स्मरण हुआ कि छाछका प्रबन्ध अबतक नहीं हुआ है। वे चिन्तामें पड गई। यह देखतेही नारायण चुपचाप रात्रिके समय कुम्हारके यहाँ गये और मटकोंको लाकर प्रत्येक घर एक एक मटका दे दिया और छाछसे भरकर दूसरे दिन प्रात कालमें उनके यहाँ पहुँचानेके लिए कहा। प्रात.काल होतेही नारियाँ छाछ लेकर आई। छाछकी अधिकता होनेपर नारायणने पिछले द्वारसे आकर धान रखे हुए मटकोंको खाली करके साफ किया और छाछसे भरकर रखा। जिधर देखो उधर छाछ ही छाछ हो गया था। माता और गगाधर की पत्नीने देखा तो यह प्रकार! पूछनेपर नारायणने कहा "मैंने केवल आपकी आज्ञाका ही पालन किया।"

सतीकी आख्यायिका ।

सवत् १६८० (शक १५४५ वैशाख शु १०) में स्वामीजी किसी एक

समय दोपहरमें संगमस्थानपर ब्रह्मयज्ञ कर रहे थे, इतनेमें एक सुहागिनने आकर भक्तिभावसे इन्हें वन्दन किया। स्वभावतः सुवासिनीको देखकर स्वामीजीने 'अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव' कह कर आशीर्वाद दिया। सुवासिनी आश्चर्यसे अवाक् हो गई और स्वामीजी से पूछने लगी कि आपका आशीर्वाद इस जन्ममें या अगले जन्ममें खरा उहरेगा! प्रश्नार्थक दृष्टिसे स्वामीजी उसकी ओर देखने लगे। इतनेमें कुछ सज्जनोंने स्वामीजीसे कहा कि इस स्त्रीका नाम अन्नपूर्णाबाई है और वह अपने गिरिधरपन्त नामक (दशकपंचक नामक ग्रामके पटवारी) मृत पतिके साथ सती होने जा रही है। सती होनेके पूर्व किसी सत्पुरुषको वन्दन कर आशीर्वाद लेनेकी प्रथा है। इसके अनुसार यह आपका दर्शन करने आयी थी। इसपर स्वामीजीने शवको पासमें लानेके लिए कहा। पासमें लानेपर उन्होंने शवपर गंगोदकका सिंचन किया। तुरन्त ही वह (मृत गंगाधरपन्त) भगवानके प्रसादसे और स्वामीजी की तपश्चर्याके फलस्वरूप निद्रासे जिस प्रकार मनुष्य जाग्रत होता है उसी प्रकार जाग्रत हो उठ बैठा! दोनों (पतिपत्नी) ने सानन्द होकर गंगामें स्नान किया और भक्तिभावसे फिर दर्शन करने गये। स्वामीजीने प्रसन्न होकर कहा कि आपके आठ पुत्र तो होंगे ही फिर और भी दो होंगे। कुल दस पुत्र होंगे। इससे उनका उपनाम 'दशपुत्रे' पड़ा। इस समयसे स्वामीजीने 'जय राम' आशीर्वाद देना प्रारम्भ किया। स्त्रीने अपना प्रथम पुत्र स्वामीजीको समर्पित किया। स्वामीजीने इस बालकका नाम 'उद्धव' रखा। पहला नाम 'शिवरामे' था।

कनेरके फूल

एक बार पंचवटीमें स्वामीजीका पुराण चालू था। पुराण श्रवण करनेके लिए बटु वेष धारण कर हनुमानजी पधारे थे। स्वामीजीने कहा कि रावणके उद्यानमें कनेरके सफेद रंगके फूल थे क्योंकि रावण शंकर-भक्त था। किन्तु बटुवेष धारी हनुमानजीने इस बातसे इन्कार किया और कहा कि वे फूल लाल रंगके थे। स्वामीजीने कहा कि उस समय जब तुमने लंकाको जला दिया तब तुम्हारी आँखें क्रोधके मारे लाल हो गई होंगी जिससे तुम्हें वे सफेद फूल भी लालके समान दिखाई पड़े होंगे? इसकी सत्यता साबीत करनेके लिए हनुमानजी

स्वामीजीको लका ले गये और वहाँ उन्होंने देखा कि फूल सचमुचमें सफेद रगके ही थे।

लिङ्गका अदृश्य होना

तीर्थयात्रामें स्वामीजी प्रथमतः (पूर्वजोंको गति देनेवाली) काशीमें गये। पहले वे विश्वेश्वरके मंदिरमें दर्शन करने गये। स्वामीजी विश्वेश्वरजी के पास ही जाना चाहते थे, इतनेमें किन्हीं ब्राह्मणोंने इनको अब्राह्मण समझकर अदर प्रवेश करनेके लिए मना किया। स्वामीजी लौटकर बाहर बैठे रहे। इधर अदर जो ब्राह्मण पूजा करते थे उन्हें अकस्मात् ऐसा आभास हुआ कि विश्वेश्वरजी का लिङ्ग अदृश्य हो गया है। अब पूजा कैसे हो सकती है? कुछ ब्राह्मणोंने सोचा कि अभी अभी जो विरागी दर्शन करने आये थे उनको दर्शन करनेके लिए मना करनेका यह फल है। इसलिए उनकी शरणमें जाना चाहिए। वे कोई महापुरुष दिखाइ देते हैं। सबको यह उपाय ठीक जान पडा और तुरन्त ही वे स्वामीजीकी शरणमें गये। उनसे क्षमाके लिए प्रार्थना की गई इतनेमें लिङ्ग पूर्ववत् दिखाई देने लगा। इस घटनासे काशीमें स्वामीजी की ख्याति हुई।

हिमालयकी यात्रा

जब स्वामीजी हिमालयकी यात्रामें ठण्डी के मारे सिकुड गये थे तब उससे बचने के लिए कोई साधन नहीं था। नित्य क्रम के अनुसार स्वामीजी का नामघोष चल ही रहा था। अपने भक्तकी इस बुरी स्थितिको देखकर हनुमानजीने शीतनिवारण के लिए हुर्मुजी रगका वस्त्र और मेखला आदि वस्तुएँ देकर वे अदृश्य हो गये। कहा जाता है कि यह वस्त्र आदि वसिष्ठ से रामचन्द्रजी को और रामचन्द्रजी से हनुमानजी को प्राप्त हुए थे।

मुंगी पैठणमें चमत्कार।

जब मुंगी पैठणमें स्वामीजीसे मनुष्य के अभ्यास के बारेमें कुछ प्रश्न पूछे गये थे तब स्वामीजीने ब्राह्मणोंको समर्पक उत्तर दिया था। तो भी ब्राह्मण

प्रतीति देखना चाहते थे। वे स्वामीजीसे कहने लगे कि देखिये, ये जो सात चीलें आकाशमें जा रही हैं उनपर निशाना लगाकर ज़रासा हमें दिखाइये तो! सुनतेही स्वामीजीने उनको एक ही बाणमें एक साथ वेध दिया। सब को बहुत आश्चर्य हुआ। चीलो को मृत देखकर कुछ ब्राह्मणोंने स्वामीजीसे प्रायश्चित्त करनेके लिए कहा। स्वामीजीने मंजूर कर लिया। किन्तु ब्राह्मणोंने अपना स्वार्थ सोचा। स्वामीजी ब्राह्मणोंसे कहने लगे कि मान लिया जाय कि मैंने प्रायश्चित किया तो भी ये चीलें जीवित नहीं हो सकतीं तो प्रायश्चित्त करनेसे क्या लाभ! ऐसा कहकर वे उन चीलोंके पास गये, उनके बदनपर अपना हाथ फेरा और उन्हें आकाशमार्गसे उड़ जानेको कहा। इनके कहने पर चीलें उड़ गईं!

एक अति कठिन प्रसंग।

यात्रामें एक अति कठिन प्रसंगका वर्णन करते हुए मेरुस्वामी लिखते हैं कि 'अत्यंत गरमीके दिन, वृक्ष और तृण रहित पर्वतके पठार, पानीका अभाव, ऐसे स्थलमें स्वामीजी एक समय पहुँचे। पाँव गरमीके मारे जलने लगे और तृषा से प्राण तड़पने लगे। पर्वत में 'हर हर' और आकाश में 'जय जय जय जय रघुवीर' शब्द गूंजता था। स्वामीजीकी दशा विचित्र हो गई। भगवन्नाम-स्मरण लगातार चल ही रहा था। क्षणमें भगवान रामचन्द्रजीने आकर अपने भक्तको आलिंगन करके आशीर्वाद दिया। तुरन्त क्षुधा, तृषा मिट गई। नेत्रोंको स्पर्श करते ही स्वामीजीको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई। प्रभुने कृपापूर्वक कहा कि मैं तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करने को तैय्यार हूँ। चाहे सो कहो। स्वामी-जीने कहा कि मुझे आप के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए। आप के चरणों का दर्शन हमेशा होता रहे।'

मेरुस्वामी आगे चलकर लिखते हैं कि

"कृत त्रेत द्वापारीं। जाले अद्भुत अवतारी। परी या समर्थाची सरी।
कोण्ही न पावे ॥ १ ॥

कृत त्रेता और द्वापारमें अद्भुत अवतार बहुत हो गये। बल्कि इन समर्थ रामदासजी की बराबरी कोई नहीं कर सकता।

शिंगणवाडीका प्रसाद।

अनुग्रह के बाद विदा होते समय शिवाजी महाराज को प्रसाद दिया गया था। उसमें मोतियोंका तुर्रा, नारिएल, मिट्टी, ककड और लीद इतने पदार्थ थे। जब उनकी माता जिजाईने पूछा कि मिट्टी, ककड और लीद ये तीन पदार्थ किस लिए दिये गये हैं, मेरी समझमें नहीं आता, तब शिवाजी बोले कि माताजी! इसमें सचमुच गूढार्थ दिखाइ देता है। मिट्टीसे मतलब है, विपुल भूमि, ककडसे, असख्य दुर्ग, और लीदसे, घोडे, हाथी आदि जानवरोंके अधिक से अधिक अस्तबल। यह सुनकर माता जिजाइ प्रसन्न हुई।

एक यवनका भ्रमनिरास

स १७१५ में जब स्वामीजी मिरज होकर कर्नाटक जाते थे तब मिरजमें जयराम स्वामी के हरिकीर्तन का कार्यक्रम चालू था।

एक समय वहाँका थानेदार दिलाल्खान रात्रिमें पहरे का निरीक्षण करने जा रहा था। बीचमें कीर्तनकी ध्वनि सुनकर वहीं जरा ठहर गया। जयराम स्वामी अपने कीतनमें कह रहे थे कि 'जो व्यक्ति सन्तोंके कहे हुए मार्गसे जाएगा उसको रामचन्द्रजी का दर्शन निश्चित होगा।' यह सुनकर दिलाल्खान चल पडा। दूसरे दिन उसने सोचा कि जयराम स्वामीको यहीं बुलाया जाय और कल रात्रिकी बातका प्रत्यक्ष अनुभव दिखाने के लिए कहा जाय। जयराम स्वामी पाल्की में लाये गये। बुलाये जानेके सम्बन्धमें जयरामस्वामी के मनमें तर्क वितर्क चल रहा था। दिलाल्खान के (कल्की रामदर्शनकी प्रत्यक्ष अनुभव की बात) पूछनेपर स्वामी समझ गये और उन्होंने मौन धारण कर लिया। स्वामी के मौन धारण करने का फायदा उठाकर थानेदारने गोमास की थाली की ओर अपनी उगली दिखाकर जयराम स्वामी को डाँटा कि राम दर्शन होना चाहिए। मैं आपके कथनानुसार करनेके लिए तैय्यार हूँ। नहीं तो आपको मुसलमान बनना पडेगा। इसपर जयराम स्वामीने सोच विचार करके जवाब दिया कि हमारे गुरुजी गगा-स्नान करने गये हैं, उनके आतेही आपको रामदर्शन कराऊगा। जयराम स्वामी के एक शिष्यने वहाँ जाकर रामदास स्वामीजीको सब वृत्तान्त

सुनाया। तुरन्त स्वामीजी क़िलेमें आये और दिलालखानसे पीछे आनेके लिए कहा। दिलालखानके वैसा करनेपर स्वामीजी शिष्योंको लेकर क़िलेके एक बुर्जपर गये। वहाँसे वे स्वयं एक छोटे झरोकेसे कूदकर नीचे की ओर खड़े हो गये। जयराम स्वामीको आज्ञा करनेपर वे भी उसी तरह कूदकर स्वामीजीके पास खड़े हो गये। दिलालखानसे भी वैसा करनेके लिए कहा गया। किन्तु वह वैसा न कर सका। उसने सोचा कि बात बिगड़ गई। दूसरेको धोखा देनेके अलावा स्वयं धोखेमें आगया हूँ। तुरन्त वह दूसरे दरवाज़ेसे बुर्जके नीचे जाकर स्वामीजीके चरणोंपर गिर पड़ा और उसने क्षमा माँगी। स्वामीजीने उसे क्षमा की और आगे ऐसा बुरा काम न करनेके लिए कहा। दिलालखानने मिरजमें अपना निवास करनेके लिए स्वामीजीसे प्रार्थना की। किन्तु उसे अस्वीकार कर स्वामीजीने दिलालखानसे रामनाम का जप करने के लिए कहा। इस प्रकार जयराम स्वामी धर्म संकटसे बच गये!

श्री समर्थ रामदास स्वामी कृत
भीमरूपी स्तोत्र।

भीमरूपी महारुद्रा वज्रहनुमान मारुती।
वनारी[1] अंजनीसूता रामदूता प्रभंजना ॥ १ ॥
महाबळी प्राणदाता सकळां उठवी बळें।
सौख्यकारी शोकहर्ता धूर्त वैष्णव गायका ॥ २ ॥
दिनानाथा हरीरूपा सुंदरा जगदंतरा।
पाताल देवता हंता भव्य सींदूर लेपना ॥ ३ ॥
लोकनाथा जगन्नाथा प्राणनाथा पुरातना।
पुण्यवंता पुण्यशीला पावना परतोषका ॥ ४ ॥
ध्वजांगें[2] उचली बाहो आवेशें लोटला पुढें।
काळाग्नी काळरुद्राग्नी देखतां कांपती भयें ॥ ५ ॥
ब्रह्मांडें[3] माईलीं नेणों आवळे दंत पंगती।
नेत्राग्नी चालिल्या ज्वाळा भ्रुकुटी ताठिल्या[4] बळें ॥ ६ ॥
पुच्छ तें मुरडिलें[5] माथा किरीटी कुंडलें बरीं।
सुवर्ण कटि कांसोटि[6] घंटा किंकिणि नागरा[7] ॥ ७ ॥
ठकारे पर्वता ऐसा नेटका[8] सडपातळू[9]।
चपलांग पाहतां मोठें महा विद्युल्लते परी ॥ ८ ॥
कोटिच्या कोटी[10] उड्डाणें झेपावे उत्तरेकडे।
मंद्राद्रीसारिखा द्रोणू क्रोधें उत्पाटिला[11] बळें ॥ ९ ॥
आणिला मागुती नेला आला गेला मनोगती।
मनासी टाकिलें मागें गतीशी तूळणा नसे ॥ १० ॥

---

१ रावणके वनका नाश करनेवाला। २ ध्वजके साथ। ३ नजाने कितने ब्रह्मांड उनके दाँतोंकी पंक्तिमें समाये हुए हैं। ४ ताना। ५ घेर लिया। ६ काछनी। ७ सुंदर। ८ पवित्रेमें खड़ा रहना। ९ उँचा पतला कद। १० करोडो। ११ उखाड़ फेंका।

अणूपासूनि ब्रह्मांडाएवढा होत जातसे ।
ब्रह्मांडा भोंवते वेढे वज्रपुच्छें करूं शके ॥ ११ ॥
तयासी तूळणा कोठें मेरुमांदार धाकुटे ।
तयासी तूळणा कैची ब्रह्मांडीं पाहतां नसे ॥ १२ ॥
आरक्त देखिलें डोळां गिळिलें सूर्यमंडळा ।
वाढतां वाढतां वाढे भेदिलें शून्य मंडळा ॥ १३ ॥
भूत प्रेत समंधादी रोगव्याधी समस्तही ।
नासती तुटती चिंता आनंदें भीमदर्शनें ॥ १४ ॥
हे धरा पंधरा श्लोकीं लाभली शोभली भली ।
दृढ देहो निसंदेहो संख्या चंद्रकला गुणें ॥ १५ ॥
रामदासीं अग्रगणू कपिकूळासि मंडणू ।
रामरूपीं अंतरात्मा दर्शनें दोष नासती ॥ १६ ॥

श्री समर्थ रामदास स्वामीकृत

आरती ।

सत्राणें उड्डाणें हुंकार वदनीं । करि डळमळ भूमंडळ सिंधूजळ गगनीं । कडाडिलें ब्रह्मांड धाकें त्रिभुवनीं । सुरवर नर नीशाचर त्या झाल्या पळणी । जयदेव जयदेव जयजय हनुमंता । तुमचेनि प्रतापें न भिंये कृतांता । जयदेव जयदेव ॥ १ ॥ दुमदुमलें पाताळ उठला पडशब्द । धगधगिलें धरणीधरें मानीला खेद । कडाडिले पर्वत उड्डगणें उच्छेद । रामीं रामदासा शक्तीचा शोध । जयदेव जयदेव जयजय०

---

१ छोटे । २ निगला । ३ भूषण । ५ बलके साथ । ५ हिलना । ६ भय । ७ राक्षस । ८ दौड़धूप । ९ नहीं डरूँगा । १० बड़ी ध्वनि हुई । ११ प्रतिध्वनि । १२ शेषनाग दूर गया । १३ नक्षत्रोंका पतन

पवन-सुत हनुमान की जय !!!

मनोजवं मारुततुल्य वेगं। जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं। श्रीराम दूतं शरणं प्रपद्ये॥

श्री रामचन्द्रार्पितमस्तु।

' मनाचे श्लोक का हिन्दी अनुवाद '

पर

और सम्मतियाँ ।

राज्यपाल लो. बापूजी अणे (बिहार)—रामदासजी की एक अत्यंत उत्कृष्ट और लोकप्रिय रचना का अनुवाद प्रकाशित करके आपने अच्छा प्रारम्भ किया है ।

पन्त प्रधान बालासाहब खेर, बम्बई—पुस्तक बहुतही अच्छी तरहसे लिखी हुई है । विद्यार्थी के लिए उपयुक्त होगी ।

श्री बाबा राघवदास—प्रयत्न सराहनीय है ।

श्री गिरिजादत्त शुक्ल ' गिरीश ' गृहवाणी कार्यालय, प्रयाग—हिन्दीमें उक्त रचनाका सुन्दर अनुवाद देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है । स्वामी रामदासजी की शिक्षाओंको ग्रहण करने के साथ ही साथ मराठी सीखनेका एक सरल साधन प्रस्तुत हो गया है ।

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक, ' कल्याण '—हिन्दी पाठकों के लिए श्री समर्थ गुरु रामदासजीकृत ' मनाचे श्लोक ' का अनुवाद करके आपने एक बडे अभावकी पूर्ति की है । इसमें शब्दार्थ दे देनेसे मूल मराठीके समझनेमें आसानी हो गयी है । प्रयत्न स्तुत्य है ।

प्रा. दां. वा. दांडेकर, स. प. कालेज, पुणें—अनुवाद उत्तम बन पड़ा है ।

डा. वि. भि. कोलते, नागपूर—मैंने अनुवाद देखा । वह अच्छा उतरा है ।

'स्वराज्य' खाण्डवा, सी. पी.—आसान और बोधक भाषाके कारण अनुवाद शीघ्रतासे लोकप्रिय होगा ।

'भारतमित्र' (रिव, गोवा)—पुस्तक सरस व सग्राह्य है।

केसरी, पुणे – राष्ट्रभाषामें किया हुआ यह अनुवाद राष्ट्रभाषाके अध्ययन करनेवालोंको अत्यत उपयुक्त है।

नवभारत टाइम्स, बम्बई—अनुवाद अत्यत सफल, सरल तथा सरस बन पडा है, इसमें सन्देह नहीं।

विविध वृत्त, बम्बई—यह अत्यावश्यक अंगसि परिपूर्ण पुस्तक राष्ट्रभाषिकोंको रामदासजीके साहित्य के अध्ययनमें दिलचस्पी पैदा करनेमें समर्थ ठहरेगी।

लोकमान्य, बम्बई—सब अंगोंसे यह अनुवाद परिपूर्ण है।

"श्री समर्थ रामदास"

सम्मतियाँ

माननीय लोकनायक, श्री माधवरावजी अणे, राज्यपाल, बिहार (रांची)—'श्री समर्थ रामदास' यह सुन्दर ग्रन्थ हिन्दीमें लिखकर श्री समर्थ के जीवन-चरित्र और काव्यका परिचय हिन्दी भाषियोंको करानेका आपका यह उपक्रम अत्यंत सराहनीय है। समर्थ संप्रदाय, आख्यायिकाएँ और श्री समर्थ की प्रासादिक कविताका चयन देकर आपने ग्रन्थकी पूर्ति की है। मुझे विश्वास है कि यह श्री समर्थ के कार्य और काव्यकी यथार्थ कल्पना करानेमें पाठकों को सहायक सिद्ध होगा। श्रीसमर्थ का जीवन चरित्र हिन्दीमें लिखकर राष्ट्रभाषा रूपी शारदापर महाराष्ट्रियोंकी तरफसे आपने अनमोल अलंकार चढाया है। मुझे उम्मीद है कि इससे महाराष्ट्रीय सन्तों तथा शूर वीरोंके कार्य की ओर प्रेमादर से देखनेकी वृत्ति हिन्दी भाषियोंमें वृद्धिगत होगी।

८-८-१९५१ (संक्षेपतः, अनुवाद)

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रा. काशी विश्वविद्यालय, (हिन्दी-संस्कृत) यह आपकी दूसरी पुस्तक भी उपयोगी है। हिन्दीमें रामदासजी के 'दासबोध' का तो अनुवाद हो गया है, पर मुझे जहाँतक ज्ञात है उनके जीवन वृत्तपर कोई प्रामाणिक पुस्तक नहीं है। इस दृष्टिसे आपने हिन्दीवालोंके लिए बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। आपने गुरुजीकी रचनाओंका संग्रह देकर इसका महत्त्व और भी बढ़ा दिया है।

२४-८-५१ (संक्षेपतः)

सन्त साहित्यके आलोचक **श्री. न. र. फाटक**, प्राध्यापक, रुइया कालेज, बम्बई—हिन्दी भाषियोंके लिए आपका लिखा हुआ श्री समर्थ रामदासजी का चरित्र मैंने पढ़ा। हिन्दी बोलनेवाली जनताको महाराष्ट्रके एक अति श्रेष्ठ सन्त महात्माके जीवन-चरित्र का परिचय हो इस उद्देश्यसे किया हुआ आपका यह उद्योग अत्यंत प्रशंसनीय है। आपके इस उद्योगके द्वारा हिन्दी भाषाके ज्ञानका योग्य उपयोग करनेका आपने जो उदाहरण रखा है वह भी मेरे मतमें हिन्दी सीखनेवाले महाराष्ट्रियोंको ध्यान देने योग्य है। इस पुस्तककी रचना और भाषा भावुकतासे पूर्ण है तथापि वह सुबोध है।

१९-८-५१ (संक्षेपतः, अनुवाद)

पं गणेश रघुनाथ वैशम्पायन, संचालक हिन्दी-मराठी कोष कार्यालय, पुणें-'श्री समर्थ रामदास' पुस्तक लिखकर आपने हिन्दी भाषी जनताका तथा उसके द्वारा भारतके हिन्दीतर प्रान्तोंके जनसमाजका बड़ा उपकार किया है। भारत के हरप्रान्तके सन्त साहित्यको हिन्दीमें पहुँचाना चाहिए। इससे जनतामें श्रद्धा और धर्मनीतिका विश्वास दृढ होगा। इसीकी आज कमी है।

३१-७-५१

नामवन्त मराठी साहित्यिक **डा. वि मि कोलते,** धंतोली, नागपूर-आपकी पुस्तक मैंने गौरसे पढी। वह अच्छी बन पड़ी है। श्री समर्थ और उनके साहित्यका हिन्दी भाषियोंको परिचय करानेका आपका प्रयास स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तकका सर्वत्र सादर स्वागत होगा। समर्थके जीवन-चरित्रके सभी मार्मिक स्थलोंको चुनकर उनको आपने सक्षेपमें रखा है। फलस्वरूप समर्थके सम्पूर्ण जीवन-चरित्र और कार्यकी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करनेमें अच्छी सहायता होगी।

५-८-५१ (सक्षेपतः अनुवाद)

कविभूषण **श्री व. ग. खापर्डे** अध्यक्ष मराठी विभाग, हि. विश्व विद्यालय काशी--रामदासजीके विषयमें हिन्दी भाषी पाठकों को जो जानना आवश्यक है, प्रायः सब इसमें सक्षेपमें आगया है। कविता-चयन बहुत अच्छा है। ग्रन्थकर्ता इसके निर्माणके लिए बहुत प्रशंसापात्र हैं।

४-९-५१ (संक्षेपतः)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	३	सूयाजीपन्त	सूर्याजीपन्त
९	१	होनपर	होनेपर
१०	४	पनी	पैनी
११	१८	कोइ	कोई
१४	१	कि	कि
,,	२	म	में
१६	३	म	में
२६	२४	स	से
३४	२	दकर	देकर
३७	१२	समारोह	समारोह
४१	२३	कद	कैद
५४	२७	आर	और
५६	२८	मार्गमें मध्वाचार्यसे	मार्गमें उस समयके मध्वाचार्यसे
५८	८	आशीवादे	आशीर्वाद
६१	२६	प्रश्नोत्तरीकी	प्रश्नोत्तरीकी
६७	१५	१७७२	१७३२
६८	४	गुसाईको	गुसाईंको
६९	२७	वे	वे
७२	१४	दीपाबाइकी	दीपाबाईकी
७४	१३	आदश	आदर्श
७६	११	स्वाथ	स्वार्थ
,,	१९	कीत	कीर्ति
,,	२२	कसे	कैसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७	५	भोगांको	भोगोंको
,,	११	रामनामीका	रामनैमीका
८०	२	आर	और
,,	३	अनुसर	अनुसार
,,	२१	सस्कार	संस्कार
८१	४	ध्रुवक	ध्रुवके .
,,	१६	महा	महान्
९३	२३	(३)	(३)
९४	१५	अपना	अपने
९९	१५	परमाथकी	परमार्थकी
१०३	१९	आर	और
१०८	५	तशुनियां	तेथुनिया
,,	२४	डलकर	डालकर
११०	१९	०	१०
१११	१९	२	११
११३	४	काणी	कोणी
१२२	२०	अवर्धे	अवर्धे
१२८	२२	आनंद वन भुवनीं	आनंदवनभुवनीं
१३६	२४	करनपर	करनेपर
१३८	१	हांतें	होतें
,,	७	डीक	ठीक
१४३	२३	–	स्वामीनी भूसंकेते
,,	२५	भट	भेंट
,,	२६	आँख	आँखें
१५५	१६	मुन्दर	सुन्दर

श्री समर्थ रामदास स्वामीके
चरित्र–साहित्य पर चुने हुए विचारणीय ग्रन्थ

ग्रन्थ	कर्ता
१ रामदास स्वामी बखर	श्री हनुमन्त स्वामी
२ समर्थ प्रताप ।	सत्कार्योत्तेजक सभा धुळे (श्री शं. श्री. देव)
३ स्वानुभव दिनकर ।	
४ राम सोहळा ।	
५ दास विश्राम धाम ।	
६ सांप्रदायिक विविधविषय । खं. १	
७ ,, खं. २	
८ *समर्थांचीं दोन जुनीं चरित्रें ।*	
९ समर्थावतार ।	
१० समर्थ हृदय ।	
११ समर्थ संप्रदाय ।	
१२ दासबोधाची प्रस्तावना ।	
१३ श्री समर्थ चरित्र ।	श्री. स. खं. आलतेकर ।
१४ श्री समर्थांचा गाथा ।	,, अनंत रामदासी ।
१५ समर्थ संजीवनी	ह. भ. प. ल. रा. पांगारकर ।
१६ मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (रामदास तृ. खं.)	,,
१७ रामदास (निबन्ध)	श्री वि. का. राजवाडे.
१८ रामदास वचनामृत	प्रा. रा. द. रानडे.
१९ संत वाङ्मयाची सामाजिक रूपरेषा	श्री. गं. बा. सरदार.
२० श्री समर्थ चरित्र	प्रा. न. र. फाटक
२१ महाराष्ट्र धर्म	श्री. रा. रा. भागवत.
२२ पांच संतकवि	प्रा. शं. गो. तुळपुळे.